ISSN No : 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

भाग 5 अंक 3 दिसंबर 2025

ISSN No. 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, (U.P.) दूरभाष-9452254524
वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com
Article Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक : **डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी**
अधिष्ठाता, उद्यान संकाय, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

वरिष्ठ संपादक : **डॉ. रोशन लाल राऊत**
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (एम.पी.)

सह सम्पादक गण : **डॉ. नीलम राव रंगारे**
वैज्ञानिक, संस्था निदेशालय
इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, लाभण्डी, रायपुर (छत्तीसगढ़)

: **डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह**
पशुचिकित्सक क्षेत्र सहायक,पशुपालन एवं डेयरी विभाग, शुआट्स, (उ.प्र.)

: **डॉ. खलील खान**
मृदा वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र दलीप नगर कानपुर देहात, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

: **डॉ. प्रमिला**
सहायक अध्यापक-सह-वैज्ञानिक, सब्जी विज्ञान, उद्यान विभाग
पं. दीन दयाल उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपरकोठी, बिहार

: **डॉ सुधीर दास**
सह-प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान, उद्यान विभाग, पं. दीन दयाल उपाध्याय उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपरकोठी, बिहार

: **डॉ आशीष रंजन**
सहायक प्रोफेसर सह जूनियर वैज्ञानिक, उद्यान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर, बिहार

: **डॉ. आशुतोष शुक्ला**
मृदा विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, सतना, मध्य प्रदेश

: **डॉ. सुनील कुमार**
असिस्टेंट प्रोफेसर, पादप रोग विज्ञान विभाग, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा (उ.प्र.)

: **डॉ. चंचल सिंह**
विषय विशेषज्ञ, पौध संरक्षण, कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि महाविद्यालय, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा, उत्तर प्रदेश

	:	**प्रखर खरे** एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज (उ.प्र.)
पांडुलिपि संपादक	:	**स्निग्धा हल्दर** सहायक संपादक, एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)
कंटैट लेखक/ स्तंभ लेखक	:	**डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय** विशेष कार्य अधिकारी आई.सी.ए.आर., आई.ए.आर.आई, झारखण्ड, हजारीबाग (झारखण्ड)
फोटोग्राफी	:	**स्वप्निल सुभाष स्वामी** वेब एडिटर प्रितेश हलदार
प्रकाशक	:	**एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)**
प्रकाशक	:	**Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)**

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

इस पृष्ठ में

- पिचिंग का फूलों में महत्व — 1 - 3
  राजेश साहू एवं मेधा साहा
- जामुन प्राकृतिक औषधि का खजाना — 4 - 7
  भारती चौधरी
- धान के प्रमुख कीटों की पहचान एवं समन्वित प्रबंधन — 8 - 12
  सविता आदित्य
- उच्च मूल्य वाले उत्पादों के लिए गेंदे के अपशिष्ट का मूल्यांकन और उनका औद्योगिक महत्व — 13 - 16
  सिमरन कश्यप, प्रियंका ठाकुर, शिल्पा, ऋषभ राज धीमान एवं सुखदीप कौर
- मोबाइल एप्स के माध्यम से बागवानी फसलों की देख रेख एवं प्रबंधन — 17 - 18
  प्रियंका धुर्वे एवं सुखलाल वास्केल
- WhatsApp, YouTube और IVR किसानों तक नई कृषि तकनीक पहुँचाने के डिजिटल सेतु — 19 - 20
  कु. अंजना गुप्ता, रश्मि शुक्ला, डी. के. सिंह, निहारिका शुक्ला एवं ए. के. सिंह
- स्मार्ट सिंचाई प्रणालीः आधुनिक कृषि की दिशा — 21 - 22
  अंजना गुप्ता एवं आर. एल. राउत
- फल उत्पादन में प्राकृतिक खेती की भूमिका — 23 - 26
  यश्मी यादव, अतुल कुमार रावत, सचिन कुमार सिंह, अंतरिक्ष देशवाल, शुभम यादव एवं धर्मेंद्र कुमार
- आय और औषधीय गुणों से भरपूर स्ट्रॉबेरी — 27 - 30
  यश्मी यादव, कु. आकांक्षा राय, देवांशु शुक्ला, कृष्णा कौशिक एवं सौरभ
- कृषि में भौगोलिक संकेतः उल्लंघन या संरक्षण — 31 - 32
  सुनील कुमार जाटव एवं बी. एस. किरार
- अलसी के पारिस्थितिकीय तन्त्र में एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन — 33 - 35
  चंचल सिंह, दीक्षा पटेल, श्याम सिंह, नरेन्द्र सिंह एवं नन्द किशोर बाजपेई

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

❖ जैव कीटनाशक का महत्व एवं कृषि में योगदान 36 - 39
नीरज नाथ परिहार एवं ज्वाला परते
❖ सब्जी उत्पादन में गुणवत्तायुक्त पौधशाला का महत्व एवं प्रबंधन 40 - 42
विनय कुमार
❖ बिहार का 'ब्लैक डायमंड' मखानाः जानें इसकी खेती के राज 43 - 45
सुधीर दास, प्रमिला, ए. पी. राकेश, संतोष कुमार सिंह एवं टी. पी. महतो
❖ मूली की उत्पादन तकनीक 46 - 48
नीरज पाली समीर एवं एब्सन टोपनो
❖ फूलों की फसल में विशेष बागवानी कार्य 49 - 52
राजेश साहू एवं मेधा साहा
❖ जैविक बीज उत्पादन 53 - 54
नीरज नाथ परिहार, ज्वाला परते एवं रोहित गोपीचंद चव्हाण
❖ सिंघाड़ा की वैज्ञानिक खेती 55 - 57
सुधीर दास, प्रमिला, ए. पी. राकेश, संतोष कुमार सिंह एवं टी. पी. महतो
❖ बैंगन फसल के प्रमुख रोगों का देख रख और प्रबंधन 58 - 60
सुखलाल वास्केल, आशीष कुमार त्रिपाठी, डी पी सिंह एवं प्रियंका धुर्वे

❖❖

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

ISSN No. 2583-3316

पिचिंग का फूलों में महत्व

राजेश साहू[1] एवं मेधा साहा[2]*

[1]पुष्प विज्ञान एवं भू दृश्य कला विभाग, पंडित किशोरी लाल शुक्ला महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, राजनांदगांव
[2]महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय दुर्ग छत्तीसगढ़

पत्राचारकर्ता: medhasahams@gmail.com

परिचय

किसी भी पौधे की अच्छी वृद्धि और अधिक उत्पादन पाने के लिए केवल बीज बोना या रोपाई करना ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि समय समय पर पौधों की उचित देखभाल भी जरूरी होती है। खेती और बागवानी में कई तरह की तकनीकें अपनायी जाती हैं, जिनसे पौधों की वृद्धि, फूलों की संख्या और गुणवत्ता बेहतर बनायी जा सकती है। इन्हीं में से एक बहुत ही सरल और प्रभावी तकनीक है पिंचिंग (Pinching)।

पिंचिंग

पौधे की ऊपर की कोमल नोक या कलिका को हल्के से तोड़ देना। यह साधारण-सा काम पौधे के जीवन चक्र में बड़ा बदलाव ला देता है। जब मुख्य कली को हटा दिया जाता है, तो पौधा अपनी ऊर्जा केवल ऊपर बढ़ने में न लगाकर, बगल की कलियों और शाखाओं को विकसित करने में लगाता है। इसके परिणामस्वरूप पौधा झाड़ीदार, संतुलित और मजबूत बनता है।

पिंचिंग क्यों की जाती है

- **ज्यादा शाखाएँ निकलती हैं:** जब ऊपर की कोमल कली को हटा दिया जाता है, तो पौधा किनारों से नई शाखाएँ बनाने लगता है।
- **फूलों की संख्या बढ़ती है:** अधिक शाखाएँ होने से ज्यादा कलियाँ और फूल आते हैं।
- **पौधे का आकार सुंदर बनता है:** पौधा झाड़ीदार और आकर्षक दिखने लगता है।
- **फूल एक साथ आते हैं:** पिंचिंग से पौधे की वृद्धि संतुलित होती है और फूल एक समय में खिलते हैं।

पिंचिंग कब और कैसे करें

- पिंचिंग पौधे की 20-30 दिन की अवस्था में करनी चाहिए।
- इसे करने के लिए पौधे की ऊपरी कोमल कली को उंगली से हल्के से तोड़ दें।
- एक पौधे में 1–2 बार पिंचिंग करना सबसे अच्छा माना जाता है।
- पिंचिंग हमेशा सुबह या शाम को करें ताकि पौधे पर धूप का सीधा असर न पड़े।

किसानों को पिंचिंग से होने वाले लाभ

- **फूलों की संख्या बढ़ना:** पिंचिंग करने से पौधों में ज्यादा शाखाएँ निकलती हैं और हर शाखा पर फूल आता है। यानी कुल मिलाकर ज्यादा फूल मिलते हैं।
- **फूलों की गुणवत्ता अच्छी होना:** पिंचिंग करने के बाद आने वाले फूल एक जैसे आकार और रंग के होते हैं और

ऐसे फूलों की मांग बाजार में ज्यादा होती है।

- **अच्छा उत्पादन और ज्यादा पैदावारः** उचित समय पर पिंचिंग करने से फूल और बीज दोनों की उपज बढ़ती है जो किसान को प्रति पौधा और प्रति खेत ज्यादा उत्पादन दिलाता है।
- **बाज़ार में ऊँचा दाम मिलनाः** एकसमान और अच्छी गुणवत्ता के फूल महंगे बिकते हैं। इससे किसान की आय बढ़ती है।
- **पौधों का संतुलित विकासः** पिंचिंग से पौधा झाड़ीदार और मजबूत बनता है और पौधे का आकार सुंदर होता है,जिससे गमले और सजावट के लिए भी उनकी कीमत बढ़ जाती है।
- **निरंतर फूल मिलनाः** पिंचिंग करने से पौधों में एक साथ और लगातार फूल खिलते हैं।जिससे किसान लंबे समय तक बाज़ार में फूल बेच सकता है।

विभिन्न फूलों में पिचिंग के प्रकार

क) कारनेशन में पिंचिंग (Pinching in Carnation)

कारनेशन की खेती में पिंचिंग एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है. जिसका उद्देश्य पौधे से अधिक संख्या में अच्छे गुणवत्ता वाले फूल प्राप्त करना होता है। कारनेशन में सामान्यतः तीन प्रकार की पिंचिंग की जाती है –

अ. सिंगल पिंचिंग (Single Pinching)

यह पिंचिंग पौधे के 5 नोड (गाँठ) अवस्था पर की जाती है। इसमें पौधे की ऊपर की बढ़ती हुई नोक को तोड़ दिया जाता है और लगभग 4–5 शाखाएँ रहने दी जाती हैं। इस विधि से जल्दी फसल प्राप्त होती है।

ब. पिंच एंड अ हाफ (Pinch and a Half)

इस पद्धति का उपयोग फूलों का निरंतर उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है। इसमें पहले मुख्य तने को पिंच किया जाता है। बाद में जब नई निकली शाखाएँ पर्याप्त लंबाई की हो जाती हैं, तो उनमें से आधी बड़ी शाखाओं को फिर से पिंच कर दिया जाता है। हालाँकि इस विधि से पहली फसल की मात्रा थोड़ी कम हो जाती है. लेकिन आगे चलकर लंबे समय तक फूलों की आपूर्ति बनी रहती है।

स. डबल पिंचिंग (Double Pinching)

डबल पिंचिंग में सबसे पहले पौधे पर सिंगल पिंचिंग की जाती है। इसके बाद जब नई निकली सभी शाखाएँ लगभग 6–8 सेमी लंबाई की हो जाती हैं, तो उन सभी को फिर से पिंच कर दिया जाता है। इस पद्धति से पौधा झाड़ीदार बनता है और फूलों की संख्या अधिक बढ़ जाती है।

ख) गुलदाउदी में पिंचिंग

गुलदाउदी की खेती में पिंचिंग एक महत्वपूर्ण क्रिया है। इसका मुख्य उद्देश्य पौधों में शाखाओं की संख्या बढ़ाना और प्रति तना अधिक फूल प्राप्त करना होता है। पिंचिंग करने से पौधा झाड़ीदार बनता है और फूलों की गुणवत्ता भी बेहतर होती है।

गुलदाउदी में सामान्यतः तीन प्रकार की पिंचिंग की जाती है

अ. सॉफ्ट पिंचिंग (Soft Pinching)

यह पिंचिंग पौधे का आकार नियंत्रित करने और उसे छोटा रखने के लिए की जाती है। इसमें शाखा की ऊपर की नोक को हल्के से तोड़ दिया जाता है। पिंचिंग के बाद लगभग 2-3 पत्तियाँ लगी हुई रहने दी जाती हैं। यह पिंचिंग पौधे की शुरुआती अवस्था में की जाती है।

ब. हार्ड पिंचिंग (Hard Pinching)

यह पिंचिंग मुख्य रूप से गमले के पौधों (Pot plants) में की जाती है। इसमें पौधे का अपेक्षाकृत लंबा हिस्सा तोड़ दिया जाता है। इसका उद्देश्य पौधे को कॉम्पैक्ट (सघन और झाड़ीदार) बनाए रखना होता है।

स. रोल-आउट पिंचिंग (Roll-out Pinching)

यह पिंचिंग केवल छोटे पौधों में की जाती है। इससे पौधे की संतुलित वृद्धि होती है और फूल अधिक मात्रा में आते हैं।

गुलदाउदी में पिंचिंग का समय

सामान्यतः गुलदाउदी में दो बार पिंचिंग की जाती है।

- **पहली पिंचिंगः** रोपाई के लगभग 4 हफ़्ते बाद
- **दूसरी पिंचिंगः** रोपाई के लगभग 7 हफ़्ते बाद

स्प्रे टाइप गुलदाउदी (Spray Chrysanthemum) में नियमित पिंचिंग की जाती है ताकि प्रति तना अधिकतम संख्या में फूल प्राप्त किए जा सकें।

ग) गेंदे (Marigold) में पिंचिंग

गेंदे के पौधे सामान्यतः सीधे ऊपर की ओर बढ़ते हैं और अंत में शीर्ष पर फूल की कली विकसित करते हैं। यदि पौधे के

इस शीर्ष भाग को शुरुआती अवस्था में हटा दिया जाए, तो पौधे में जल्दी से बगल की शाखाएँ निकलने लगती हैं। इन शाखाओं पर अधिक संख्या में फूल आते हैं, जो आकार और गुणवत्ता में एकसमान तथा बेहतर होते हैं।

गेंदे में पिंचिंग करने का सबसे उपयुक्त समय रोपाई के 30-40 दिन बाद माना जाता है। इस समय की गई पिंचिंग से फूलों की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

गेंदे (Marigold) में पिंचिंग के प्रकार

अ. सिंगल पिंचिंग (Single Pinching)

इसमें केवल एक बार ही पिचिंग किया जाता है जो रोपाई के लगभग 30- 40 दिन बाद की जाती है जिसमें पौधे की ऊपर की शीर्ष भाग (apical bud) को हाथ या कैची के माध्यम से तोड़ दिया जाता है।

ब. डबल पिंचिंग (Double Pinching)

पहली बार पिचिंग के बाद जब नयी शाखाएँ निकल आती हैं और उसे बढ़ने दिया जाता है, फिर लगभग 20 दिन बाद दूसरी पिंचिंग सभी शाखाओं पर की जाती है।

इसी प्रकार से अन्य फूलों में जैसे चाइना एस्टर, गैलर्डिया, गुलाब, गुलदाउदी और पिटुनिया में भी रोपाई के लगभग 30 से 35 दिनों के अंदर में पिचिंग किया जाता है जिससे पौधे का विकास अच्छा होता है, अधिक शाखाएँ निकलती हैं और फूलों की संख्या एवं गुणवत्ता दोनों में वृद्धि होती है।

मुख्य बातें

- पिंचिंग सरल, सस्ती और प्रभावी तकनीक है अर्थात् छोटे निवेश में बड़ा फायदा।
- समय का ध्यान रखें - अलग फसलों में उपयुक्त समय भिन्न होता है (उदाहरणः गेंदे - 40 व 60 दिन; चाइना एस्टर - 30–35 दिन; गुलदाउदी - 4 व 7 सप्ताह)।
- अति से बचें - बहुत बार या बहुत गहरा पिंचिंग पौधे को कमजोर कर सकता है।
- पिंचिंग के बाद हल्की सिंचाई, पोषण और रोग-रक्षा पर ध्यान दें ताकि पौधा जल्दी स्वस्थ हो कर बढ़े।
- गमले/शो-प्लांट्स में हार्ड पिंचिंग से पौधा कॉम्पैक्ट और आकर्षक बनता है; कमर्शियल फसलों में सिंगल/डबल पिंचिंग उद्देश्य अनुसार चुनें।

सुझाव (Practical tips)

- पिंचिंग हमेशा साफ-सुथरे हाथ/औजार से करें ताकि रोग न फैले।
- बरसात या अत्यधिक आर्द्रता के समय पिंचिंग कम करें - रोग का खतरा बढ़ जाता है।
- छोटे-छोटे प्रयोग करके अपने क्षेत्र और किस्म के अनुसार सबसे उपयुक्त समय और प्रकार तय करें।

निष्कर्ष

पिंचिंग एक साधारण परंतु प्रभावशाली बागवानी/कृषि तकनीक है जो पौधे की ऊर्ध्वगामी वृद्धि को नियंत्रित कर. शाखाओं की संख्या बढ़ाकर और ऊर्जा का सदुपयोग कर फूलों की संख्या. गुणवत्ता तथा उपज दोनों बढ़ाती है। सही समय और उपयुक्त विधि (जैसे सिंगल या डबल पिंचिंग) अपनाने से पौधा झाड़ीदार. संतुलित एवं बाजार योग्य फूल देता है. जिससे किसान की आमदनी भी सुधरती है। पिंचिंग केवल अधिक फूल देने तक सीमित नहीं है बल्कि इससे बीज उत्पादन, पौधों की बनावट और फूलों का आकार-समानता भी बेहतर होती है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

जामुन प्राकृतिक औषधि का खजाना

भारती चौधरी

उद्यान शास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, जे. एन. के.वी.वी, जबलपुर

पत्राचारकर्ता: bharati.choudhary06@gmail.com

परिचय

जामुन (*Syzigium cuminii* Skeels), जो मर्टेसी (Myrtaceae) कुल का सदस्य है, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण फल है। यह भारत का देशज फल है। भारत में जामुन के अधिकतम पेड़ उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में बिखरे हुए पाए जाते हैं। यह फल अपनी कठोर प्रकृति के साथ-साथ अद्वितीय औषधीय और पोषण संबंधी गुणों के कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध है। यह विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होता है तथा जामुन का उपयोग सदियों से आयुर्वेदिक और पारंपरिक चिकित्सा में मधुमेह को नियंत्रित करने, पाचन में सुधार और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है।

जामुन का औषधीय लाभ

जामुन के कई औषधीय लाभ है, जो निम्नलिखित हैः

डायबिटीज नियंत्रणः जामुन में जंबोलिन और जम्बोसाइन जैसे यौगिक तत्व होते हैं, जो स्टार्च को शुगर में बदलने की प्रक्रिया को धीमा करते हैं और इंसुलिन की संवेदनशीलता में सुधार करते हैं, जिससे खून में शर्करा की मात्रा नहीं बढ़ पाती है।

पाचन दुरुस्त करेः इसमें फाइबर की अच्छी मात्रा होती है, जो कब्ज, गैस और अपच जैसी समस्याओं से राहत दिलाता है। जामुन का सिरका पेट की तकलीफों में आराम पहुँचाता है। यह भूख को बढ़ाता है तथा कब्ज को दूर करता है। जामुन खाने से यकृत सम्बन्धी बीमारियाँ दूर होती हैं तथा मूत्राशय की असमान्यता को दूर करने में सहायक होता हैं। जामुन से बना शरबत उल्टी-दस्त होने पर तुरंत राहत देता है। पथरी के मरीज यदि जामुन की गुठली के चूर्ण को दही के साथ खाये तो पथरी रोग में आराम मिलता हैं।

त्वचा को चमकदार बनाएः जामुन में मौजूद विटामिन और एंटीऑक्सीडेंट त्वचा को साफ और चमकदार बनाने में मदद करते हैं और समय से पहले बुढ़ापा आने के लक्षणों को रोकते हैं।

हृदय को स्वस्थ रखेः इसका सेवन दिल को मजबूत बनाता है और यह रक्तचाप को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

वजन घटाने में सहायकः जामुन में मौजूद फाइबर भूख को नियंत्रित करता है और वजन कम करने में मदद करता है।

इम्युनिटी बूस्ट करेः विटामिन और खनिजों से भरपूर होने के कारण यह शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है.

एनीमिया में फायदेमंदः जामुन आयरन का अच्छा स्रोत होता है, जो शरीर में हीमोग्लोबिन के स्तर को बढ़ाता है.

आँखों की रोशनी बेहतर बनाएः विटामिन सी आँखों के कॉर्निया में कनेक्टिव टिश्यू को बनाए रखने में मदद करता है।

लिवर को स्वस्थ रखेः जामुन लिवर को स्वस्थ रखने में भी

फायदेमंद होता है।

भारतीय पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली में जामुन को कई औषधीय गुणों से युक्त माना गया है। इसका पके हुए फल को ताजा खाया जाता है और इससे जेली, जैम, स्क्वैश, वाइन, सिरका और अचार जैसे विभिन्न प्रसस्कृत खाद्य पदार्थ भी बनाए जा सकते हैं। जामुन फल, अपनी अनूठे स्वाद के कारण, गर्मियों के लिए एक ताजगी प्रदान करने वाला फल है। इसके अर्क में विभिन्न औषधीय गुण पाए जाते हैं, जिनमें जीवाणुरोधी, कवकरोधी, विषाणुरोधी, सूजनरोधी, हृदय-संरक्षक, एलर्जीरोधी, कैंसररोधी, रसायनरोधी, विकिरण-संरक्षक, मुक्त कण नष्ट करने वाले, एंटीऑक्सीडेंट, यकृत-संरक्षक, अतिसाररोधी, रक्त शर्करा को कम करने वाले और मधुमेहरोधी प्रभाव शामिल हैं।

जामुन की प्रजातियाँ

सिज़ीगियम क्यूमिनी (जावा प्लम, जामुन): यह भारतीय उपमहाद्वीप का बड़ा, सदाबहार सुंदर पेड़, लेकिन पूरे दक्षिण-पूर्व एशिया और प्रशांत द्वीपों में भी प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। हरियाणा के साथ-साथ शेष भारत-गंगा के मैदानों में बड़े पैमाने पर इसकी खेती की जाती है। जामुन का फल आमतौर पर अंडाकार से आयताकार के गहरे बैंगनी या नीले रंग के, रसदार, मीठे गूदे और एक छोटी सी गुठली वाले होते हैं।

सिज़ीगियम जाम्बोस (गुलाब सेब): यह पेड़ मध्यम, सदाबहार होते हैं और असम, बिहार, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरात के तटीय क्षेत्रों में उगाए जाते हैं। पत्तियों में बहुत छोटी डंठल और कैलिक्स स्थायी होते हैं। इसके फल हल्के पीले-सफेद रंग के, गुलाब की खुशबू वाले और बीज बहुभ्रूणीय होते हैं।

सिज़ीगियम फ्रुटिकोसम: यह पेड़ हवा से बचाव के लिए उपयुक्त होते हैं और सीधे बढ़ने की आदत रखते हैं। इसके फल खाने योग्य और छोटे होते हैं।

साइज़ीजियम डेंसिफ्लोरा: साइज़ीजियम क्यूमिनी के लिए रूटस्टॉक के रूप में उपयोग के लिए उपयुक्त होता हैं। यह दीमक के हमले के लिए प्रतिरोधी है।

सिज़ीगियम यूनिफ्लोरा (सूरीनाम चेरी या पिटंगा चेरी): यह एक छोटा पेड़ होता हैं और इसमें छोटे आकार के फल लगते हैं, जिनका रंग चमकीला लाल और स्वाद सुगंधित होता है। यह पेड़ दक्षिण भारत में पाया जाता है।

जामुन की खेती

भूमि: जामुन के पेड़ को किसी भी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है, लेकिन अच्छी पैदावार के लिए दोमट मिट्टी का उपयोग किया जाना चाहिए, जिसमें पानी का निकास अच्छा हो,ज्यादा उपयोगी होता है। जामुन को लवणता वाली या जहाँ पानी भरा रहता हो दलदली जमीन भी उपयुक्त है, परन्तु रेतीली जमीन में नहीं लगाना चाहिए।

वर्धन विधि: जामुन को बीज एवं कलम दोनों विधियों से लगाया जा सकता है।

बीज से लगाने की विधि: अच्छे परिपक्व फलों की गुठली निकालकर ताजे बीजों को 25-25 सेमी की दूरी पर 4-5 सेमी की गहराई में बोकर मानसून आने पर लगाया जाता है एक वर्ष बाद पौधे लगाने लायक हो जाते हैं, जामुन की गुठली (बीज) को पॉलिथीन की थैलियों में लगाया जाता है।

चष्मा विधि: अच्छी पैदावार देने वाले पौधे से बीज इकट्ठे करके उन्हें नर्सरी में जुलाई-अगस्त में बोया जाता है और एक साल में चष्मा चढ़ाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

रोपण विधि: गर्मी के मौसम में गहरी जुताई करके खेत तैयार कर लिया जाता है गड्ढों का आकार 1-1-1 मीटर रखा जाता है बीज से उत्पन्न होने वाले पौंधों को लगाने के लिए 10-10 मीटर की दूरी जबकि कलिका बर्धन से तैयार पौधों को लगाने के लिए 8-8 मीटर रखी जाती है।

जामुन की महत्वपूर्ण किस्में

सीआईएसएच-42 (CISH-42): केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान (CISH), लखनऊ द्वारा विकसित। 7बीज अत्यंत छोटा और गूदा प्रतिशत लगभग 91% होता है। उच्च उपज देने वाली और प्रसंस्करण के लिए यह उपयुक्त किस्म है।

सीआईएसएच-37 (CISH-37): यह भी CISH द्वारा विकसित एक उच्च गुणवत्ता वाली किस्म है। इसके फल मध्यम से बड़े आकार के होते हैं और स्वाद में मधुर होते हैं। गूदा-बीज अनुपात अच्छा और औषधीय उपयोगों के लिए उपयुक्त होता है।

जामुन GJ-2: यह किस्म गुजरात के आनंद जिले के ओडे गाँव से एकत्रित की गयी है। इसका पुष्पन काल मार्च माह में होता है। यह एक प्रारंभिक (early) किस्म है, जो मई के चौथे सप्ताह में पक जाती है। इसके फल लंबे (oblong) आकार के होते हैं, जिनका औसत वजन 20.0 ग्राम होता है।

जामुन GJ-8: यह भी गुजरात के आनंद जिले के ओडे गांव से प्राप्त किया गया है। इसका पुष्पन काल भी मार्च माह में होता है। यह भी एक प्रारंभिक किस्म है, जिसके फल लंबे (oblong) आकार के होते हैं और यह जून के पहले सप्ताह में पकते हैं। फलों का औसत वजन 17.0 ग्राम होता है।

थार क्रांतिः थार क्रांति को केंद्रीय बागवानी अनुसंधान केंद्र, वेजलपुर (गोधरा), गुजरात में विकसित किया गया और वर्ष 2016 में इसे केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर द्वारा जारी किया गया। यह अर्ध-विस्तारित (semi-spreading) वृद्धि प्रकृति वाली किस्म है और शीघ्र फल देने वाली है, जिसमें तीसरे वर्ष से ही पुष्पन शुरू हो जाता है। यह किस्म जल्दी पकने वाली है, जिसमें गूदा और घुलनशील ठोस (TSS) की मात्रा अधिक होती है, तथा यह उच्च सघनता वाले रोपण के लिए उपयुक्त है।

गोमा प्रियंकाः उच्च उपज, उच्च गूदा सामग्री और छोटा कद, जो इसे उच्च घनत्व वाले रोपण के लिए आदर्श बनाता है। गोमा प्रियंका, किसानों के बीच एक लोकप्रिय किस्म है, जो अपनी उच्च उपज (50-70) किग्रा/पेड़ 10वें वर्ष के बाद, उच्च गूदा सामग्री (85-90%), कम बीज वजन, विपुल और नियमित फल देने वाली, तुलनात्मक रूप से छोटे कद के लिए जानी जाती है, जो इसे उच्च घनत्व वाले रोपण के लिए आदर्श बनाती है। यह गुजरात से आगे राजस्थान, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश तक फैल चुकी है।

AGJ-85: यह आयताकार, गोल फल होते हैं, जो गहरे बैंगनी या नीले रंग के होते हैं। फल मीठे गूदे के साथ रसदार होते हैं और उनमें एक ही बीज होता है। इस किस्म ने उच्च गूदा-बीज अनुपात दिखाया है, जिसमें गूदा सामग्री लगभग 89.18% है। फल का वजन लगभग 15.44 ग्राम है, जिसमें गूदा वजन 13.23 ग्राम हाहै।

कोंकण बहादोलीः यह आरएफआरएस, वेंगुर्ला द्वारा पहचानी गई एक पौध है। फल का औसत वजन 14 से 16 ग्राम होता है और इसमें 16 डिग्री ब्रिक्स टीएसएस होता है।

राजमुनः इसके फल बड़े आकार के (लंबाई 2.5-3.5सेमी), आयताकार, गहरे बैंगनी रंग के होते हैं, जिनमें बैंगनी गुलाबी, रसदार और मीठा गूदा और छोटे बीज होते हैं। फल जून-जुलाई में पकते हैं।

पुष्पन और फलन

फूल पत्तियों की धुरी में शाखाओं पर लगते हैं। उत्तर भारतीय परिस्थितियों में, मार्च के पहले सप्ताह में पुष्पन शुरू होता है और अप्रैल के अंत तक जारी रहता है। मौसम की शुरुआत में पराग उर्वरता अधिक होती है। कलियों की अधिकतम ग्रहणशीलता परागण के एक दिन बाद होती है। जामुन एक क्रॉस-परागण है और परागण मधुमक्खियाँ, घरेलू मक्खियाँ के

हवा द्वारा किया जाता है। हाथ से परागण द्वारा अधिकतम फल प्राप्त किए जा सकते हैं जब यह फूल आने के एक दिन बाद किया जाता है। उसके बाद, फल लगने में तीव्र गिरावट देखी जाती है। फूल खिलने के 3 से 4 सप्ताह के भीतर फूलों और फलों का भारी झड़ना होता है। बाद में प्राकृतिक फल गिरने को GA3 60 पीपीएम के दो छिड़कावों से कम किया जा सकता है, एक फूल खिलने पर और दूसरा फल लगने के 15 दिन बाद। जामुन के विकास और फल विकास के पैटर्न को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता हैः पहला चरण फल लगने के 15-52 दिनों के बाद होता है जिसमें फलों की धीमी वृद्धि होती है, दूसरा चरण फल लगने के 52 से 58 दिनों के बाद होता है, जिसमें तेजी से वृद्धि होती है और तीसरा और अंतिम चरण फल लगने के 58 से 60 दिनों के बाद होता है, जिसमें धीमी वृद्धि होती है और फलों के वजन में बहुत कम वृद्धि होती है।

खाद एवं उर्वरकः गड्ढों को खोदने के 20-25 दिन बाद अच्छी पकी हुयी गोबर की खाद 20 से 25 किलो प्रत्येक गड्ढे में डाल देते हैं। इसके बाद तैयार पौधों को लगा दिया जाता है। लगाने के तुरंत बाद पानी देते हैं, जिससे मिट्टी ठीक तरह से जम जाए। परिपक्व वृक्षों के लिए यही खुराक बढ़ाते हुये 50-60 किग्रा (पौधे) वर्ष दी जानी चाहिए। जैविक खाद देने का यही समय फूल आने से पहले का होता है। बढ़ते हुये वृक्षों को 500 ग्रा. नत्रजन, 600 ग्रा. फॉस्फोरस और 300 ग्रा. पोटाश प्रति वर्ष देना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधनः खाद के तुरंत बाद सिंचाई की जानी चाहिए। युवा पौधों के बेहतर विकास के लिए 6-8 बार सिंचाई की करने की आवश्यकता होती है। विकसित वृक्षो में अच्छी फल, कलियों के लिए सिंतबर से अक्टूबर माह में और फलों के विकास के लिए मई से जून माह मे सिंचाई की जानी चाहिए। समान्यतः 5-6 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। लंबे समय तक सूखे की स्थिति फलों के लिए हानिकारक होती है।

फसल तुड़ाई और कटाई का समयः फलों के पकने के बाद तुरंत तुड़ाई करना चाहिए, क्योंकि परिपक्व अवस्था में फल वृक्ष पर नहीं रह सकते है, पके फलों की मुख्य पहचान है कि वे गहरे बैंगनी या काले रंग के हो जाते है। फलों की प्रतिदिन तुड़ाई की जाती है। पके हुये फलों को हाथ से तोड़ा जाता है ताकि फलों को संभावित नुकसान से रोका जा सके।

पैकिंगः फलों को पहले छिद्रित पॉलिथीन थैलों में पैक करके पत्तियों से ढ़का जाता है, ताकि पकडते़ समय छोटा या कोई भी नुकसान न हो। फलों को सामान्य बाँस की टोकरियों में पैक किया जाता है और स्थानीय बाजार में बिक्री के लिए भेजा जाता है।

भडांरणः स्वस्थ फलों को कमरे के तापमान पर 2 दिन तक और शीत-गृहों (कोल्ड स्टोरेज) में 3 हफ्तों तक संरक्षित किया जा सकता हैं। शीत गृह में जामुन के फलों को छिद्र वाली पॉलिथीन बेग में भरकर 8 -10 डिग्री सेल्सियस तापमान और 85-90 प्रतिशत आद्रता पर रख सकते है।

जामुन का प्रसंस्करण

जामुन एक औषधीय गुणों से भरपूर फल है, जिसे विभिन्न रूपों में संरक्षित और उपयोग किया जा सकता है। इसके बीजों में भी एंटी-इन्फ्लेमेटरी और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधियाँ साबित हुई हैं। जामुन के पके फलों से स्वास्थ्य पेय, संरक्षित खाद्य पदार्थ, शरबत, सिरप, स्क्वैश, जेली और वाइन बनाई जाती है। यहाँ जामुन के प्रसंस्करण की प्रमुख विधियाँ दी गई हैंः

जामुन का रसः विधि/पके हुए जामुन को धोकर बीज निकालें। गूदे को मिक्सर में पीसें और छान कर रस निकालें। यह डायबिटीज, पाचन और त्वचा रोगों में लाभकारी होता है। फ्रिज में 3-4 दिन तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

जामुन का सिरकाः जामुन के रस को किण्वन के लिए 15-20 दिन तक बंद बर्तन में रखें। यह पाचन सुधार, वजन नियंत्रण और त्वचा के लिए उपयोगी होता है। महीनों तक सुरक्षित रहता है।

जामुन की गुठली का चूर्णः जामुन की गुठलियों को धो कर छाया में सुखाएं, फिर पीस कर चूर्ण बनाएं।यह मधुमेह, मूत्ररोग और पाचन समस्याओं में लाभकारी। एयरटाइट डिब्बे में लंबे समय तक सुरक्षित।

जामुन कैंडी/ मुरब्बाः जामुन को चीनी के साथ पका कर कैंडी या मुरब्बा बनाया जाता है। यह स्वादिष्ट और औषधीय स्नैक के रूप में उपयोगी होता है। काँच के जार में महीनों तक सुरक्षित जा सकता है।

जामुन तेलः जामुन की गुठलियों से तेल निकालने की प्रक्रिया में कोल्ड प्रेसिंग या सोल्वेंट एक्सट्रैक्शन का उपयोग होता है।यह त्वचा रोग, बालों की देखभाल और मालिश में उपयोगी होता है।

निष्कर्ष

जामुन का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में मधुमेह सहित विभिन्न रोगों के उपचार के लिए तथा प्रसंस्करण के लिए किया जाता रहा है, जो अनेक रोगों में लाभकारी है, जामुन के फल, बीज, पत्ते और छाल, सभी के अपने-अपने उपयोग और फायदे हैं। परंतु इसका सेवन सावधानी से और शरीर की स्थिति को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

धान के प्रमुख कीटों की पहचान एवं समन्वित प्रबंधन

सविता आदित्य

कीट विज्ञान विभाग, लिगों मुदियाल कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, नारायणपुर (छ.ग.)

पत्राचारकर्ता: sdahariya17@gmail.com

परिचय

धान फसल की उत्पादकता प्रत्यक्ष रूप से उन्नतशील किस्म, पोषक तत्व, सिंचाई, खरपतवार, कीट-ब्याधि एवं रोग प्रबंधन पर निर्भर करती हैं। फसलों को कीटों, रोंगों एवं खरपतवारों से प्रतिवर्ष 30 प्रतिशत तक हानि होती है। जिसमें 35 प्रतिशत खरपतवारों द्वारा, 26 प्रतिशत रोंगों द्वारा, 20 प्रतिशत कीटों द्वारा, 7 प्रतिशत भंडारण द्वारा एवं 15प्रतिशत अन्य कारण सम्मिलित है। उक्त विवरण से स्पष्ट है कि खरपतवारों के बाद सबसे अधिक क्षति रोंगों एवं कीटों द्वारा होती है। कीटों एवं बीमारीयों का प्रकोप महामारी का रूप भी लें लेता है। इनके प्रकोप से फसल शत्-प्रतिशत तक नष्ट हो जाती है। खरीफ मौसम में वातावरण की अनुकूल परिस्थितियों से कीटों का आक्रमण बढ़ जाता है। जिससे उत्पादन में काफी कमी हो जाती है। जिनका उचित समय में प्रबंधन करना अति आवश्यक हो जाता है।

धान के प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

क) तना छेदक (Yellow Stem Borer)

इस कीट की इल्ली फसल की सभी अवस्था को नुकसान पहुँचाती है। इल्ली कंसे वाली अवस्था मे मुख्य तने (केन्द्रीय पत्ती-चक्र) पर आक्रमण करती है जिससे तना खुल नहीं पाता है जो भूरेपन में बदलकर सुखा तना (Dead heart) बनाती है। बाली अवस्था में यही इल्ली बाली के निचले हिस्से को काटकर सुखी बालियाँ (White ears) बनाती हैं जिसमे पोंचे दाने होती है जो खींचनें पर आसानी से बाहर निकल जाती है। वयस्क मादा कीट के आगे पंख पीलापन लिए बीच में गहरा काला निशान होता है जबकि नर कीट छोटे भूरे रंग के होते है, जो 31-40 दिन में अपना एक जीवन चक्र पूर्ण कर लेती है एवं वर्ष में 4-5 पीढ़ियॉं पनपती है।

प्रबंधन

- मई के महीने में खेतों की गहरी जुताई कर देने से अधिकांश कीट या तो तापमान की वजह से या कीटहारी जीवों/पक्षियों का ग्रास बनकर समाप्त हो जाता हैं।
- अच्छी उत्पादन क्षमता व कीट निरोधी/सहनशील किस्में जैसे- सस्य़श्री, विकास (तना छेदक सहनशील) आदि का चयन फसलोत्पादन हेतु करें।
- धान की प्रचलित किस्म स्वर्णा के साथ पूसा बासमती-1 (तना छेदक के लिए प्रलोभक किस्म) 9:1 की दर से लगाने पर कीट का प्रकोप कम हो जाता हैं।
- थरहा निकालने के पाँच दिन पूर्व कार्बोफ्यूरॉन नामक दानेदार दवा 2 किलो स.त./हेक्टेयर से थरहा उपचार या 0.2 प्रतिशत क्लोरपायरीफास से बीजोपचार करें।
- नर्सरी में बेहन (seedling) की पत्तियों पर दिए गये अण्ड समूहों को एवं खेत में घूमकर अण्ड समूह को चुनकर एकत्र करके नष्ट करतें रहें। इससे कीट प्रकोप की तीव्रता लगभग 40 प्रतिशत तक कम हो जाती।
- फसल क्षेत्र में प्रकाश प्रपंच लगाकर कीटों की उपस्थिति

व संख्या सतत् निगरानी रखते हुए वयस्क कीटों को नष्ट कर दें।

- फिरोमोन ट्रेप 25/हेक्टेयर की दर से लगाएं व हर तीसरे सप्ताह पश्चात सेप्टा बदलते रहें।
- हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं की उपस्थिति बनाये रखने हेतु आर्थिक क्षति स्तर का ध्यान रखें।
- 1 अंडा समूह प्रति वर्ग मीटर या 10 प्रतिशत सूखा तना या 1 तितली प्रति वर्ग मीटर कीट प्रकोप होने पर दानेदार दवाईं फिपरोनिल 0.3 जी 20 किलो प्रति हेक्टेयर या क्लोरेंट्रेनिलीप्रोल 4जी 10 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से खाद या रेत मे मिलाकर धान की नर्सरी/कंसा/गभोट अवस्था के समय डाले या क्लोरेंट्रेनिलीप्रोल 18.5 एस.सी को 150 मि.ली या फ्लूबेन्डामाइड 480 एस.सी को 250 मि.ली या फिपरोलिन 5% एस.सी को 1000 मि.ली प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करें।

ख) भूरा माहों (Brown Plant Hopper)

भूरा माहों भी धान के प्रमुख्न कीटों में से एक है। विपरीत परिस्थितियों मे इस कीट से 20-40 प्रतिशत तक फसल नुकसान का आंकलन किया गया है। इस कीट का प्रकोप कंसा अवस्था से बाली निकलने की अवस्था तक कीट के शिशु तथा व्यस्क पौधों के निचली सतह से रस चुसकर नुकसान पहुँचाती है। कीट प्रकोप की तीव्रता होने पर फसल गोलाई मे झुलसा हुआ सा प्रतित होता है।

प्रबंधन

- कीट निरोधी/सहनशील किस्में जैसे-त्रिगुणा, विधि (मांहो निरोधी) आदि का चयन फसलोत्पादन हेतु करें।
- जहाँ तक संभव हो 15 जून तक बुवाई व 15 जुलाई तक रोपाई का कार्य पूर्ण कर लें।
- पौधों के आपस की दूरी 15-20 सेमी. रखे प्रत्येक 3 मीटर के बाद 30 सेमी. की पट्टी खाली छोड़े, जिसका उपयोग निरीक्षण पथ के रूप में किया जा सके जो ाक भूरा माहों के फैलाव को रोकने में सहायक होती हैं।
- नत्रजन से कीटों का आक्रमण बढ़ता है। अतः संतुलित मात्रा में भूमि के प्रकार एवं किस्मों की अवधि के अनुसार नत्रजन, स्फुर एवं पोटाश उर्वरकों को 3:2:1 में दे।
- काक्सीनेला बीटल की सक्रियता माहों के नियंत्रण में सहायक है इसके लिए खेत के मेड़ों पर बरबटी जैसी फसलें, जिसमें जिनसे मैनी कीट का प्रकोप होता है को लगाना लाभदायक होता हैं।
- माहों लगे खेत में 3-4 दिनों के लिए पानी का स्तर कम कर दें, जिससे भूरा माहों जल स्तर के साथ नीचे उतरकर अण्डें देता हैं बाद में पुनः पानी भर देने से माहों के अण्डें नष्ट हो जाते है व कीट प्रकोप की तीव्रता कम हो जाती है।
- 10-20 भूरा माहों प्रति पौध गुच्छा कीट प्रकोप होने पर इमिडाक्लोप्रीड 17.8 एस. एल. को 250 मि.ली प्रति हेक्टेयर या ब्यूप्रोफेजिन 25ः एस.सी को 1000 मि.ली. प्रति हेक्टेयर या डाइनेटोफ्यूरान 20ः एस.जी. 150-200 ग्राम प्रति हेक्टेयर या एसीटामिप्रिड 20ः एस.पी. प्रति हेक्टेयर या ट्राइफ्लूमेजोपायरिम 10 एस.सी. का 235 मिली/हेक्टेयर या फ्लोनिकामिड 50 डब्लू. जी. का 150 ग्राम/हेक्टेयर की दर से 400-500 लीटर पानी में मिला कर, नोजल नीचे करते हुए सीधे कीटों (संपर्क विष) पर शाम के समय डालें।

ग) पत्ती लपेटक/चितरी (Leaf Folder)

इसकी इल्लियाँ पत्ती के दोनो किनारों को आपस में जोड़ कर पत्तियों का हरा पदार्थ खुरच कर खाती हैं जिससे पत्तियां सफेद झिल्लीदार, मुड़ी व झुलसी हुई दिखाई देती हैं। वयस्क कीट नारंगी-भूरा होता है व पंखों मे बहुत सी छितरी लाइनें, चकत्तियां व किनारों पर गहरी धारी होती है। कीट का पूरा जीवन-चक्र 27-32 दिन में पूरा हो जाता है व तीव्र प्रकोप की दशा में पौधों की बढ़वार मारी जाती है जिससे लगभग 10 प्रतिशत

तक उत्पादन में कमी हो सकती है।

प्रबंधन

♦ जहां तक संभव हो 15 जून तक बुवाई व 15 जुलाई तक रोपाई का कार्य पूर्ण कर लेने से पत्ती लपेटक का आक्रमण कम होता हैं।

♦ पौधों के आपस की दूरी ज्यादा रखने (22x5x20 से.मी. और 30x20 से.मी.) एवं नाइट्रोजन उर्वरक का कम उपयोग करने से इसका प्रकोप कम होता हैं।

♦ छायादार जगह में इसका प्रकोप अधिक होता हैं। अतः ऐसे कारक जो खेत के अंदर छाँव करते हो उसे हटा दे।

♦ 2 पूर्णतः क्षति ग्रस्त पत्ती साथ में इल्ली प्रति पौध गुच्छा कीट प्रकोप होने पर क्लोरेंट्रेनिलीप्रोल 18.5 एस.सी को 150 मि.ली या फिपरोलिन 5% एस.सी. को 800 मि.ली. या फ्लूबेन्डामाइड 480 एस.सी. को 250 मि.ली. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

घ) बंकी (Case Worm)

यह कीट धान की कंसा अवस्था में तथा निचली खेतों में जहाँ दूसरे खेतों का पानी बह कर इकट्ठा होता है वहाँ इस कीट का प्रकोप अधिक होता है।इस कीट की इल्ली पत्तीयों को ऊपर से काट कर उसका खोल जैसा बना लेती है व इसके अंदर रहते हुए पत्तियों का हरा पदार्थ खाती है जिससे पत्तियाँ ऊपर से कटी हुई व सफेद धारियाँ युक्त दिखाई देती है। कीट प्रकोप की तीव्रता होने पर खेतों में छोटे-छोटे धान के पाईपनुमा/ नाव जैसी संरचना तैरती हुई नजर आती है जिसमें इल्लियाँ होती है।

प्रबंधन

♦ बुवाई व रोपाई कार्य जल्दी करें जिससे बंकी का प्रभाव कम होता हैं।

♦ नत्रजन से कीटों का आक्रमण बढ़ता है अतः संतुलित मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करें।

♦ पौधों के आपस की दूरी ज्यादा रखने (22.5x20 से.मी. और 30x20 से.मी.) से इसका प्रकोप कम होता हैं।

♦ खेत के पानी में मिट्टी तेल (1 लीटर मिट्टी तेल को 25 किलो मिट्टी मे मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव कर) डालकर धान में पोंगा पर रस्सी चलाने से कीड़ें पानी में गिरकर नष्ट हो जाते है या परभक्षियों का ग्रास बन जाता हैं।

♦ 1-2 खोल प्रति पौध गुच्छा कीट का प्रकोप होने पर फिपरोलिन 5% एस.सी या क्विनॉलफास 25 ई.सी को 800-1000 मि.ली प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

ङ) गंगई (Gall Maidge)

यह कीट प्रमुख रूप से धान की कंसा अवस्था में फसल को हानी पहुँचाती है। इस कीट की इल्ली (मैगट) पौधे की प्ररोह बिंदु (विकसित होने वाला बिंदु) को खाकर नष्ट कर देती है, जिससे पौधे की वृद्धि रूक जाती है और गाल निर्मित हो जाता है जो धीरे-धीरे लम्बाई में बढ़ता है जिसके कारण एक लम्बा, खोखला, हल्का पीला, चाँदी के समान धान के पौंधों का बीच का भाग बन जाता है 'जिसे सिलवर सूट' कहते है। तने के स्थान पर पोंगा पाईप बनता है, जिसमें बालियां नहीं आती जिसके कारण 8-50 प्रतिशत तक हानि हो सकती है। इस कीट की क्रियाशीलता जलवायु पर निर्भर करती है और अधिकतर अगस्त से नवम्बर तक क्रियाशील रहते है। इसका वयस्क मक्खी लम्बी टॉग, नारंगी उदरवाली मच्छर के समान होता है।

प्रबंधन

♦ पुरानी पेड़ी फसल की जुताई कर नष्ट करने से इसका प्रकोप कम होता है।

♦ खेत के अंदर व मेंढ़ों पर उगने वाली खरपतवारों का नियमित रूप से उन्मूलन आवश्यक होता है।

♦ उत्पादन क्षमता व कीट निरोधी किस्में जैसे- आई. आर.- 36, महामाया, दंतेश्वरी, सुरक्षा आदी का चयन फसलोत्पादन हेतु करें।

♦ 5-7 दिन मे खेत से पानी निकालते रहने से इसकी संख्या कम होती है।

♦ नत्रजन से कीटों का आक्रमण बढ़ता है।अतः संतुलित मात्रा में भूमि के प्रकार एवं किस्मों की अवधि के अनुसार नत्रजन, स्फुर एवं पोटाश उर्वरकों को 3:2:1 अनुपात की मात्रा में दे।

♦ 1 पोंगा प्रति वर्ग मीटर इस कीट का आक्रमण दिखाई देते ही दानेदार दवाई फिपरोलिन 0.3 जी का 25 किलो प्रति

हेक्टेयर या कार्टाप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी को 18-25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से रेत में एक समान मिलाकर छिड़काव करें।

च) कटुवा (Cut Worm)

इसे 'सैनिक कीट' या 'फौजी कीट' भी कहा जाता है। इस कीट की इल्ली रोपी गयी फसल में पत्तियों की बीच की शिरायें छोड़ते हुये पौधों की पत्तियाँ पूरी तरह खत्म कर देते हैं। धान की फसल पकने के समय इल्ली धान की बालियों को काटकर खेत में गिरा देती हैं। तीव्र प्रकोप होने की दशा में पूरी फसल बर्बाद हो जाती हैं।रात्रिचर कीट होन के कारण दिन में दिखाई नहीं देते एवं सूर्य ढलते ही ये सक्रिय हो जाते हैं। इसलिए प्रातः खेत पर मात्र कटी हुई धान की बालियाँ ही दिखाई देती है।यदि खेत में धान के पौधों के टिलरस को बीच से खोलकर देखा जाए तो 10-12 इल्ली तक धान की एक ही गुच्छा में देखने को मिलता हैं। धान की फसल में इस कीट का प्रकोप सितम्बर से शुरू होकर अक्टूबर के प्रथम एवं द्वितीय सप्ताह तक अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता हैं।वयस्क कीट मध्यम आकार का तगड़ा, स्लेटी, भूरे रंग का आगे के पंखों पर काले चकत्ते व पीछे पंख सफेदपन लिए हुए भूरे होते है। यह कीट 30-40 दिन में अपना जीवन चक्र पूरा कर लेती हैं।

प्रबंधन

- कटुवा इल्ली का प्रकोप दिखने पर खेतों में पानी भर देने से इल्लियाँ कीट परभक्षियों का ग्रास बन जाता हैं।
- नहर अपासी क्षेत्रों में जब पानी एक खेत से दूसरे खेत में जाता है, तब पानी आने के मार्ग में जाल लगाकर कटुवा कीट की इल्लियों का प्रवेश रोक लेना लाभप्रद होता हैं।
- 1 इल्ली प्रति पौधा कीट का प्रकोप होने पर क्लोरपारीफॉस 20 ई-सी- को 2500 मिली या डाईक्लोरोवास 80% ई-सी- 600 मिली या लेम्बडासाइहोलाथ्रीन को 800-1000 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से शाम के समय छिड़काव करें।

छ) गंधी कीट (Gandhi Bug)

पतले, इकहरे और लम्बे टांगों वाले गंधी कीट खेतों में जून में दिखाई देती हैं एवं मानसून वर्षा शुरू होते ही खेतों के आसपास घासों में अण्डा देना शुरू कर देता है और जैसे ही धान के पौधे उगते हैं, इस कीट की शिशु व प्रौढ़ अवस्था दोनों ही कोमल पत्तियों, तने एवं दूधियावस्था में धान की बाली का रस चूसने के कारण धान की बालियों के दाने खोखले तथा हल्के हो जाते हैं एवं छिलके का रंग सफेद हो जाता है। धान की फसल को दुग्धावस्था (सितंबर-अक्टूबर) में सर्वाधिक 20-25 प्रतिशत नुकसान होता है। इस कीट का आक्रमण होने पर खेतों से अवांछित गंध निकलती है जिसके कारण इसे 'गंधी कीट' के नाम से जानते हैं।

प्रबंधन

- फसल क्षेत्र में प्रकाश प्रपंच लगाकर कीटों की उपस्थिति व संख्या सतत् निगरानी रखते हुए वयस्क कीटों को नष्ट कर दें।
- 15-20 बग या कीट प्रति वर्ग मीटर कीट प्रकोप होने पर एबामेंक्टिन 500 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

ज) पेनिकल माईट (Penicle Rice Mite)

पेनिकल माईट नग्न आँखों से दिखाई नहीं देता हैं। पर्णच्छद (Leaf sheeth) के अंदर इसे देखने के लिए न्यूनतम 20x हाथ के लेंस (Hand lance) की आवश्यकता होती हैं। वयस्क माईट भूसे के रंग, अंडाकार एवं लगभग 250 माइक्रोन लम्बाई के होते हैं। नर कीट अधिक सक्रिय होते है और पत्ती सतह पर चलते हुए देख सकते हैं। तापमान के आधार पर 7-21 दिन मे एक संपूर्ण जीवनचक्र पूरा कर लेते हैं। यह कीट अंकुर से लेकर फसल पकने तक प्रत्यक्ष रूप से पत्ती शिरा, पर्णच्छद व दाने को नुकसान करता है एवं अप्रत्यक्ष रूप से रोगजनकों को बढ़ावा देती है जिससे बॉझ अनाज सिंड्रोम (sterile grain syndrome), ढीला एवं भूरा पर्णच्छद (Sheeth rot), मुड़ा हुवा गर्दन, खाली या आंशिक भरे दाने के साथ भूरे रंग के धब्बे के साथ विकृत दाने का विकास होता है। पर्णच्छद के नुकसान से पौधे की प्रकाश संश्लेषण एवं प्रजनन क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

प्रबंधन

- ग्रसित क्षेत्र मे फसल कटाई के बाद जुताई करें जिससे सर्दियों में फिर से नये पौधे न निकल पायें।
- ग्रसित क्षेत्रों मे धान के अलावा अन्य वैकल्पिक फसल को बदलकर लगायें।
- कम स्तर पर माईट की संख्या पकड़ने के लिए रोपाई के 15 दिन बाद नमूना ले एवं रबी मे धान फसल लेने से बचें।
- चूंकि माईट कीट ना होकर के एक प्रकार की मकड़ी की प्रजाति है अतः इसके रासायनिक प्रबंधन के लिए कीटनाशक की जगह मकड़ीनाशक का उपयोग करना चाहिए। इसके लिए पहला छिड़काव गभोट आने के समय व दूसरा छिड़काव 2-3 बाली आने के स्थिति में हेक्साथियोजोक्स 5.45 प्रतिशत ईसी का 250 मिली प्रति एकड या प्रोपरजाइट 57 प्रतिशत

ईसी का 500 मि.ली. प्रति एकड या स्पायरोमेसिफेन 22.9 प्रतिशत एस.सी. का 150 मि.ली. प्रति एकड या एबोमेक्टिन 1.8 प्रतिशत 100 मि.ली. प्रति एकड या फेनपायरोक्सीमेट 5 प्रतिशत ईसी का 300 मि.ली. प्रति हेक्टयर उपयोग करें। इनमें से किसी भी एक मकड़ीनाशक के साथ प्रोपीकोनाजोल 25 ईसी का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ मिलाकर सुबह या शाम के समय छिड़काव करना चाहिए।

कीटों के प्रबंधन हेतु सामान्य निर्देश

♦ कीटों की पहचान कर उनकी तीव्रता व कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या के आधार पर ही रासायनिक दवाओं का उपयोंग करें।

♦ भूमि की तैयारी के समय उचित मात्रा मे गोबर व हरी खाद का 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से खेत मे डालें।

♦ जहाँ तक सम्भव हो खेत से खेत की बाढ़ विधि से सिंचाई ना करें।

♦ प्रकाश प्रपंच में दुधिया रंग बल्ब लगाएं व शाम 6 बजे से रात्रि 10 बजे तक लाइट ट्रैप चलाकर कीटों की निगरानी करे।

♦ हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं, मित्र किटों का संरक्षण एवं संवर्धन आवश्यक है।

♦ इस हेतु फसल का सतत् निरीक्षण करते रहें व मित्र कीट एवं हानिकारक कीटों की संख्या का अनुपात 2ः1 हो तो दवा की आवश्यकता नहीं है लेकिन स्थिति विपरीत हो अर्थात्1:2 हो, तभी कीटनाशकों का उपयोग करें।

♦ हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं की उपस्थिति बनाये रखने हेतु आर्थिक क्षति स्तर का ध्यान रखें।

♦ खेत मे फसल रहने पर कीटाधारी पक्षियों की सक्रियता बढ़ाने के लिए ''टी'' या ''वाई'' अकार की लकड़ियां बीच-बीच मे गड़ा दे।

♦ अधिक मात्रा मे नत्रजन उर्वरक का उपयो या सिन्थेटिक पायरेथ्राईड या अत्यधिक विषैली कीटनाशक के उपयोग से माहों कीट की समस्या प्रचण्ड रूप धारण करती है।

♦ बाली अवस्था मे तना छेदक के लिए डाला गया तीव्र कीटनाशक फसल मे माहों की संख्या बढ़ाने मे सहायक होता है।

♦ फसल पक जाने के उपरांत माहों कीट दिखने पर कीटनाशक का छिड़काव अनुपयोगी होता है।

♦ सदैव दवाई की अनुशंसित मात्रा एवं सान्द्रता के घोल का उपयोग खेतों मे करें।

♦ वांछित दवा का घोल अलग से किसी प्लास्टिक बर्तन में घोल बनाकर स्प्रेयर में भरे न कि स्प्रेयर में पानी लेकर दवा मिलाएं।

♦ दानेदार दवाई धान की गभोट अवस्था के बाद नहीं डालें।

♦ दानेदार दवाई उपयोग करते समय खेत में पानी का स्तर 6-7 सेमी. से अधिक न हो एवं दवा डालकर 3-4 दिन पानी रोककर रखें।

♦ फूल आने की अवस्था में छिड़काव शाम के समय ही करें।

♦ सफेद व भूरा माहों के प्रभावी नियंत्रण हेतु पौधे के निचले भाग में ही छिड़काव/भुरकाव करें।

♦ छिड़काव के 3 घंटे के अंदर बारिश हो जाने पर पुनः दवा का छिड़काव /भूरकाव करें।

♦ तेज हवा चलने पर एवं हवा के बहाव की विपरीत दिशा में छिड़काव नहीं करें।

♦ रसायनिक दवाओं का छिड़काव करते समय सुरक्षात्मक उपायों का ध्यान रखें।

♦ कई बार रासायनिक कीटनाशक प्रभावहीन हो जाते है इसके प्रमुख घटकों में कीटनाशकों का स्तरहीन होना, सही उपयोग विधि का न अपनाया जाना एवं निर्धारित मात्रा एवं सान्द्रता संबंधी निर्देशो का पालन नहीं करना प्रमुख हैं।

♦ खेत का एक निश्चित अंतराल पर लगातार सर्वेक्षण करना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

फसल संरक्षण के रसायनों का उपयोग जिस तरह से हो रहा है। वह भविष्य के लिए सुरक्षित नहीं कहा जा सकता। वर्तमान में ऐसे ऐसे खतरनाक कीटनाशक उपलब्ध है जिनका उपयोग समूचे मानव जीवन एवं पर्यावरण के लिए अत्यधिक खतरनाक है। रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से कीटों की प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ रही है वह विभिन्न प्रकार के नए-नए कीट एवं रोगों का विकास हो रहा है। आसपास में मौजूद मित्र कीट वह फसलों के शत्रु किट को खाने वाले पक्षी घातक रसायनों के कारण लगभग समाप्त होते जा रहे हैं ।इन खतरों को देखते हुए कीटनाशकों के उपयोग को नियंत्रित करना और वैकल्पिक उपायों को अपनाना आवश्यक है, जिसे समन्वित कीट प्रबंधन कहते हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

उच्च मूल्य वाले उत्पादों के लिए गेंदे के अपशिष्ट का मूल्यांकन और उनका औद्योगिक महत्व

सिमरन कश्यप[1]*, प्रियंका ठाकुर[2], शिल्पा[3], ऋषभ राज धीमान[4] एवं सुखदीप कौर[5]

[1]पुष्पकृषि एवं भूद्रश्य वास्तुकला विभाग, [2]क्षेत्रीय बागवानी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केंद्र एवं [3]फल विज्ञान विभाग, क्षेत्रीय बागवानी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केंद्र, धौलाकुआं, सिरमौर

[4]फल विज्ञान विभाग, डॉ यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

[5]सांख्यिकी विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जलंधर, पँजाब

पत्राचारकर्ता: simrankashyap285@gmail.com

परिचय

भारत में नगरपालिका अधिकारियों को गेंदे के फूलों के कचरा प्रबंधन में गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। मुख्य समस्या यह है कि प्रार्थना के बाद इनका पुनः उपयोग नहीं किया जाता है। टैगेटेस इरेक्टा, टैगेटेस पैटुला और कैलेंडुला ऑफिसिनेलिस एल. के फूलों के कचरे का उपयोग आमतौर पर कैरोटीनॉयड और फ्लेवोनॉयड निष्कर्षण के लिए किया जाता है और बाद में, अगरबत्ती और बायोगैस उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है। गेंदे के पौधों का उपयोग उनके विकास चरण के दौरान फाइटोरेमेडिएशन के लिए भी किया जाता है। ल्यूटिन उद्योग अपनी बढ़ती बाजार मांग के कारण फलफूल रहा है, जिसके 2022 तक लगभग 2121.2 बिलियन टन तक पहुँचने की उम्मीद है, जिसमें गेंदा वैश्विक स्तर पर एक प्रमुख योगदानकर्ता है। साबुनीकृत गेंदे के ओलियोरेसिन से ल्यूटिन को अलग करने की प्रक्रिया से 70-85इ शुद्धता वाला उत्पाद प्राप्त होता है। ल्यूटिन गेंदे की पंखुड़ियों का एक प्रमुख ज़ैंथोफिल (70-88%) है, और अधिकतम 21.23 मिलीग्राम/ग्राम ल्यूटिन निकाला गया। इस समीक्षा में चुनिंदा गेंदा प्रजातियों के गुणों, उनकी संरचना और विभिन्न फ्लेवोनोइड्स व कैरोटीनॉयड्स, विशेष रूप से ल्यूटिन के निष्कर्षण पर चर्चा की गई है। इसके अलावा, गेंदा ल्यूटिन के विभिन्न निष्कर्षण विधियों, गेंदा अपशिष्ट के संग्रहण और कई मूल्यवर्धित उत्पादों को प्राप्त करने के लिए उनके बाद के उपयोग पर भी चर्चा की गई है। भौतिक उपचारों में, अल्ट्रासोनिक-सहायता प्राप्त निष्कर्षण और 5% ठोस भार के साथ एंजाइमी उपचार अधिकतम उपज देने वाली विधियाँ थीं।

भूमिका

गेंदे की खेती एशियाई और अफ्रीकी क्षेत्रों में व्यापक रूप से की जाती है, जहाँ इसकी अनुकूलन क्षमता अधिक होती है और इसे कटे हुए फूलों, खुले फूलों और गमले के फूलों के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। हालाँकि, कई देशों में सबसे पसंदीदा प्रकार खुले फूल हैं। विशेष रूप से भारत में, इनका उपयोग सामाजिक और धार्मिक कार्यों में गजरे और विभिन्न प्रकार की मालाओं के रूप में बड़े पैमाने पर किया जाता है। भारत में देवताओं की पूजा में फूल चढ़ाने का बहुत महत्व है; इसके कारण, बहुत सारा पुष्प अपशिष्ट उत्पन्न होता है। त्योहारों के मौसम में, गेंदे के फूल विशेष रूप से कई देवताओं को आशीर्वाद के रूप में चढ़ाए जाते हैं। देवताओं को पुष्प अर्पित करने के बाद, फूल पूजा का उद्देश्य पूरा कर देते हैं, लेकिन अपना मूल्य खो देते हैं और फिर उन्हें अपशिष्ट के रूप में माना जाता है, अन्य अपशिष्ट के साथ एकत्र किया जाता है और फिर जल निकायों में या अन्य अपशिष्ट के साथ फेंक दिया जाता है जो पर्यावरण को प्रदूषित करता है। इन अपशिष्ट फूलों से कई लाभकारी, छोटे पैमाने के उत्पाद बनाए जा सकते हैं। अफ्रीकी गेंदा एक औषधीय पौधा है, जिसकी खेती लगभग हर जगह की जाती है । उदाहरण के लिए, गेंदे की एक प्रजाति टैगेटेस इरेक्टा है, जो अफ्रीका में उगायी जाती है। टैगेटेस की 33 अलग-अलग प्रजातियाँ हैं, जबकि दो सबसे आम प्रकारों

में से, फ़्रांसीसी गेंदा, टैगेटेस पैटुला को दिया गया नाम है, और अफ़्रीकी गेंदा, टैगेटेस इरेक्टा को दिया गया नाम है। टैगेटेस पैटुला, एक पुष्पीय पौधे की प्रजाति है, जो मेक्सिको और ग्वाटेमाला का मूल उपज है और विभिन्न देशों में इसकी व्यापक प्राकृतिक आबादी है। गेंदे की खेती मुख्यतः कई कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें फसल प्रबंधन, बीज और मिट्टी की गुणवत्ता, वर्षा का समय, अक्षांश आदि शामिल हैं। टैगेटेस प्रजाति। इसमें कुछ फाइटोकेमिकल्स और न्यूट्रास्युटिकल्स होते हैं जिनका उपयोग आंखों से संबंधित बीमारियों (जैसे मोतियाबिंद और उम्र से संबंधित धब्बेदार अधः पतन (एएमडी), हृदय रोगों, कैंसर आदि को ठीक करने के लिए किया जा सकता है। गेंदे की पंखुड़ियों में ल्यूटिन सामग्री (ऑक्सीजन युक्त कैरोटीनॉयड ज़ैंथोफिल) का उच्च स्तर होता है और इसका उपयोग खाद्य और फ़ीड उद्योगों में रंग एजेंटों के रूप में किया जाता है, साथ ही एंटीऑक्सिडेंट के लिए भी किया जाता है।

गेंदे के फूल की पंखुड़ियों में कैरोटीनॉयड और पॉलीफेनॉल्स पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, जहाँ ल्यूटिन एस्टर एक प्रमुख घटक है, जो कुल कैरोटीनॉयड का 70-79% होता है। शोधकर्ता इस सजावटी पौधे पर अधिक ध्यान दे रहे हैं क्योंकि इसमें जैवसक्रिय यौगिक मौजूद हैं और इसकी अपार चिकित्सीय क्षमता, विशेष रूप से मैक्युलर डिजनरेशन की संभावना को कम करने में, है। कैरोटीनॉयड सबसे प्रचुर मात्रा में पाए जाने वाले और बार-बार पाए जाने वाले वर्णक हैं जो सभी पौधों और जानवरों के परिवारों में पाए जाते हैं। लगभग 1100 ज्ञात कैरोटीनॉयड हैं, और विभिन्न अध्ययनों ने इस बात का प्रमाण दिया है कि विभिन्न स्रोतों से प्राप्त लगभग 50-60 कैरोटीनॉयड मानव शरीर के लिए लाभकारी हैं। गेंदे के फूलों में ल्यूटिन एक प्रमुख कैरोटीनॉयड है, जिसमें 3 से 6इ ज़ेक्सैंथिन होता है और यह फैटी एसिड जैसे पामिटिक एसिड, मिरिस्टिक एसिड और लॉरिक एसिड के साथ एस्टरीकृत रूप में मौजूद होता है।

भूमि का भारी धातु संदूषण एक और बड़ा पर्यावरणीय खतरा है। विभिन्न स्थानों पर भारी धातु संदूषण के खतरों से निपटने के लिए आमतौर पर कई भौतिक-रासायनिक उपचार तकनीकों का उपयोग किया जाता है, लेकिन इन विधियों में कमियाँ हैं, जैसे कि आर्थिक और व्यावसायिक रूप से व्यवहार्य न होना, प्रकृति को नुकसान पहुँचाना और मृदा स्वास्थ्य को खराब करना। इसलिए, जैविक विधियों की तुलना में रासायनिक उपचार को प्राथमिकता नहीं दी जाती है। पर्यावरण की सुंदरता बढ़ाने के अलावा, टैगेटेस पैटुला एल जैसे सजावटी पौधे पर्यावरण को साफ करने, अतिरिक्त आय प्रदान करने और नए काम के अवसर पैदा करने में भी मदद करते हैं। गेंदा फूल के अपशिष्ट में पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व और सेल्यूलोसिक अंश होते हैं, जो इसे विभिन्न प्रकार के उपयोगों के लिए उपयुक्त बनाता है, जिसमें जैव ऊर्जा उत्पादन, लॉन कंडीशनर के लिए ड्रेसिंग, खाद तैयार करना और पर्यावरण के अनुकूल अगरबत्ती, गुलाब जल और अन्य सामान शामिल हैं। इसलिए, गेंदा-अपशिष्ट-उत्पादित लागत प्रभावी जैव ईंधन में स्थायी ऊर्जा मांगों को पूरा करने की क्षमता रखता है। चूँकि गेंदा अपशिष्ट कई उच्च मूल्य वाले उत्पादों की पेशकश करता है, यह केवल एक अपशिष्ट के बजाय एक संसाधन के रूप में विकसित होता है और उपचार करने से पहले उत्पाद निष्कर्षण के लिए अपनाए जाने पर एक परिपत्र जैव अर्थव्यवस्था में योगदान करने की बड़ी क्षमता प्रदर्शित करता है।

गेंदा से प्राप्त अन्य मूल्यवर्धित उत्पाद और उनकी भूमिकाएँ

गेंदा का फूल भारत के मंदिरों में सबसे लोकप्रिय चढ़ावा है। ये फूल अपशिष्ट, अन्य अपशिष्ट चढ़ावों की तरह, अपना उद्देश्य पूरा करने के बाद पर्यावरण के लिए खतरा बन जाते हैं। इस तरह के फूलों के कचरे का उपयोग विभिन्न तरीकों से उपयोगी उत्पाद बनाने के लिए किया जा सकता है, जो देवताओं को अर्पित किए गए फूलों के अनुचित निपटान से होने वाले प्रदूषण से पर्यावरण की रक्षा करने में भी मदद कर सकते हैं। साहित्य में विभिन्न विधियों का उल्लेख किया गया है, जैसे कि रंगद्रव्य और फ्लेवोनोइड्स का निष्कर्षण, रंग निष्कर्षण, आवश्यक तेल निष्कर्षण, अगरबत्ती उत्पादन, होली का रंग, बायोगैस उत्पादन और वर्मीकंपोस्टिंग।

गेंदे के कचरे से अगरबत्ती उत्पादन

- सीएसआईआर-सीआईएमएपी (वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद-केंद्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान), लखनऊ ने सुगंधित कोन और अगरबत्ती बनाने के लिए बेकार फूलों और पत्तियों का उपयोग करके एक नवीन तकनीक विकसित की है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण कम होता है। इस नवीन तकनीक ने भारी मात्रा में बेकार फूलों का उपयोग करके, सामान्य, चारकोल-आधारित अगरबत्तियों के धुएँ की विषाक्तता से जुड़ी समस्याओं को काफी हद तक कम किया है।
- सीएसआईआर-सीआईएमपी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित मिशन सक्षम नामक परियोजना में आध्यात्मिक स्थलों से प्राप्त पुष्प अपशिष्ट का उपयोग अगरबत्ती बनाने के लिए करने पर ध्यान केंद्रित किया गया और औसतन 1 किलो कच्चे

माल से 1500 अगरबत्तियां बनाई जा सकीं। सूखे फूलों को फिर बाइंडिंग एजेंट (अरबी गोंद और मक्का पाउडर) के साथ मिलाया गया, साथ ही उन्हें दहनशील बनाने के लिए थोड़ी मात्रा में चारकोल भी मिलाया गया। मिश्रण को धीरे-धीरे गूंथकर आटा तैयार किया गया, और फिर अगरबत्ती बनाने के लिए आटे को बांस की डंडियों पर लपेटा गया। गेंदे में कुछ कीटनाशक गुण पाए जाते हैं; गेंदे के फूल वाले हिस्से का इस्तेमाल आमतौर पर विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है। गेंदा को पीसकर पाउडर बनाया गया ताकि उसे अगरबत्ती में बदला जा सके। यह एक किफायती वाणिज्यिक उत्पाद है जिसका कोई दुष्प्रभाव नहीं है।

गेंदा से बायोगैस

गेंदा, गेंदे के पत्तों, तनों और समाप्त हो चुके फूलों के समग्र मूल्यवर्धन के माध्यम से रासायनिक यौगिकों और बायोगैस के उत्पादन के लिए एक वैकल्पिक विधि है। शोधकर्ताओं ने गेंदे के फूलों के अपशिष्ट से बायोगैस उत्पादन बढ़ाने के तरीके विकसित किए हैं, जैसे कि अभिनव क्षारीय पूर्व-उपचार, सौर पाचक तापन, और खाद्य अपशिष्ट के साथ सह- पाचन। पारंपरिक सोडियम हाइड्रॉक्साइड पूर्व-उपचार की तुलना में, सोडियम कार्बोनेट और सोडियम बाइकार्बोनेट का उपयोग करके पुष्प अपशिष्ट के एक अनूठे क्षारीय पूर्व-उपचार से बायोगैस उत्पादन में 106% की वृद्धि हुई, जबकि रासायनिक पूर्व-उपचार लागत में 96% तक की बचत हुई। इसके अतिरिक्त, परिवेशी वातावरण में संचालित पाचकों की तुलना में, पाचक के सौर तापन ने बायोगैस उत्पादन में 122% की वृद्धि की। इसके अतिरिक्त, पुष्प अपशिष्ट और खाद्य अपशिष्ट के सह-पाचन से बायोगैस उत्पादन में 32.6% की वृद्धि हुई। पुष्प अपशिष्ट से बनी कच्ची बायोगैस में मीथेन की मात्रा 57% से अधिक थी, जो अन्य अध्ययनों की तुलना में अधिक थी। जब इन तकनीकों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है तो समाज लाभान्वित हो सकता है।

चिकित्सीय प्रतिनिधि के रूप में गेंदा

प्राचीन काल से ही, पौधे अनेक रोगों के उपचार का एक महत्वपूर्ण स्रोत रहे हैं। पौधों से प्राप्त हर्बल औषधियों का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा पद्धति के रूप में विभिन्न रोगों के उपचार हेतु किया जाता रहा है। ये चिकित्साएँ दुष्प्रभावों से मुक्त और अत्यंत किफ़ायती हैं। भारत में, विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में विभिन्न समुदायों द्वारा 8000 औषधीय पादप प्रजातियों का उपयोग किया जाता है। दिलचस्प बात यह है कि केवल 880 प्रजातियाँ (10%) ही बाज़ार या व्यापार में सक्रिय हैं। इसलिए, हर्बल और किफ़ायती चिकित्सा को बढ़ावा देने के लिए कुशल पादपों की खोज की आवश्यकता है।

टैगेटेस इरेक्टा को त्वचा के घावों के उपचार के लिए एक संभावित उपचार एजेंट के रूप में जाना जाता है, जो सामयिक अनुप्रयोग (खारा से इलाज किए गए लोगों की तुलना में पहले उपचार के लिए अग्रणी), घाव के संकुचन को बढ़ावा देने और सूजन को नियंत्रित करने के लिए है। गेंदा अर्क में अतिरिक्त औषधीय गुणों की एक विस्तृत श्रृंखला के साथ-साथ एंटीऑक्सिडेंट, एंटी-एडेमेटस, एंटी-ह्यूमन इम्यूनोडेफिशिएंसी वायरस (एचआईवी) और इम्यूनोस्टिमुलेंट गतिविधियों की उपस्थिति साबित हुई है। इसके अलावा, अन्य गुणों में हेपाटो-प्रोटेक्टिव, एंटीसाइटोटॉक्सिक और स्पैस्मोलाइटिक गतिविधियां शामिल हैं और वे बढ़े हुए ट्यूमर नेक्रोसिस फैक्टर (टीएनएफ-अल्फा), प्रो-इंफ्लेमेटरी साइटोकिन्स, इंटरल्यूकिन (आईएल-1 बीटा, आईएल-6), इंटरफेरॉन (आईएफएन-गामा) और तीव्र-चरण प्रोटीन (सी-रिएक्टिव प्रोटीन) की अभिव्यक्तियों पर भी प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। अन्य ज्ञात पौधे जैसे लैवेंडुला स्टोइचस, रोडोडेंड्रोन आर्बोरियम और करकुमा लोंगा, जिनका उपयोग चिकित्सीय एजेंट के रूप में किया जाता है।

गेंदे का सगंध तेल और इसके लाभ

स्वाद और सुगंध उद्योगों में जंगली गेंदे की माँग उनके आवश्यक तेल की मात्रा के कारण बढ़ रही है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन के कारण, आमतौर पर पौधों पर अजैविक तनाव बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक तेल की वृद्धि, अंकुरण और गुणवत्ता में कमी आती है। जंगली गेंदे में ऐसे प्रतिकूल प्रभावों से निपटने के लिए कई सहनशीलता तंत्र होते हैं। गेंदे के पौधे टैगेटेस मिनुटा के जैवसक्रिय यौगिक औषधीय गुण प्रदर्शित करते हैं और विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों, सूत्रकृमियों और कीटों के विरुद्ध व्यापक सूक्ष्मजीवनाशक और कीटनाशक क्षमता रखते हैं। टी. मिनुटा के वाष्पशील आवश्यक तेल की ऐलीलोपैथिक क्षमता का परीक्षण आक्रामक खरपतवारों, जैसे कि फालारिस माइनर रेट्ज़ और चेनोपोडियम म्यूरेल एल., और ऐमारैंथस विरिडिस एल. में किया गया। टी. मिनुटा के वाष्पशील आवश्यक तेल ने खुराक पर निर्भर तरीके से खरपतवारों की वृद्धि, अंकुरण, क्लोरोफिल की मात्रा और श्वसन क्षमता को उल्लेखनीय रूप से कम कर दिया।

फाइटोरेमेडिएशन में गेंदा पौधे का पारिस्थितिक महत्व

गेंदे के पौधे में भारी धातुओं को जमा करने की क्षमता होती

है और वे एक मजबूत जड़ प्रणाली विकसित करते हैं जो उन्हें दूषित मिट्टी में जीवित रहने में मदद करती है, जिससे व्यावसायिक रूप से मूल्यवान उत्पादों के स्रोत के साथ मिट्टी के परिशोधन और भस्मीकरण आदि द्वारा बायोमास से भारी धातुओं के निष्कर्षण में मदद मिलती है। दो गेंदे की प्रजातियों (टैगेटेस पैटुला और टैगेटेस इरेक्टा) की उच्च-संचयी प्रकृति का अध्ययन विभिन्न प्रकार की मिट्टी (लाल, काली, जलोढ़, मिट्टी, सीवेज कीचड़, सीवेज-सिंचित और बगीचे की मिट्टी) में गमले की स्थितियों में एक समान स्पाइक वाले भारी धातु प्रदूषण (कैडमियम, क्रोमियम और नीकल) के तहत किया गया था और निष्कर्ष निकाला गया था कि गेंदे की दोनों प्रजातियां कैडमियम और नीकल के बायोरेमेडिएशन में प्रभावी थीं। कैडमियमको टैगेटेस इरेक्टा द्वारा अधिक संचित किया गया था।

ल्यूटिन के औद्योगिक अनुप्रयोग

गेंदे के फूलों का उपयोग विभिन्न उद्योगों द्वारा किया जाता है, जिनमें कपड़ा उद्योग, खाद्य उद्योग, फार्मा उद्योग, कृषि उद्योग और पशु चिकित्सा उद्योग शामिल हैं। गेंदे के फूल प्राकृतिक रंगों, फाइटोकेमिकल्स, सुगंधित तेलों आदि के स्रोत के रूप में उपयोग किया जाता है। वर्तमान ल्यूटिन बाजार मुख्य रूप से आहार पूरक, फार्मास्यूटिकल्स, जलीय कृषि और पशु उद्योगों में विभाजित है।खाद्य उद्योग गेंदे के फूलों का उपयोग प्राकृतिक रंगद्रव्य के रूप में सबसे आकर्षक पीले रंग,मक्खन मिठाइयाँ आदि बनाने के लिए करता है। अधिक आकर्षक रूप के लिए, सूखे गेंदे को चाय में भी डाला जाता है। गेंदे के फूलों में प्राकृतिक ß कैरोटीन की उपस्थिति के कारण, इसके अर्क का उपयोग खाद्य योजक के रूप में किया जाता है। पेय, सूप और पेस्टो में एक नाजुक स्वाद लाने के अलावा, ये फूल कई व्यंजनों में रंग भर देते हैं । गेंदे के फूलों से बनी चाय पेट की परेशानी को कम कर सकती है, पेट के अल्सर का इलाज कर सकती है और ऐंठन को कम कर सकती है। टी. इरेक्टा के पत्तों का उपयोग पोल्ट्री उद्योग में मुर्गियों की पीली त्वचा और उनके अंडों में मौजूद नारंगी जर्दी को रंगने के लिए व्यापक रूप से किया जाता है। मुर्गियाँ एक कैरोटीनॉयड का उपयोग करके मुर्गियों की त्वचा का रंग एक निश्चित रंग में बदल देती हैं और प्रजनन क्षमता और चयापचय के विकास में भूमिका निभाती हैं। पोल्ट्री क्षेत्र में, गेंदे का उपयोग अक्सर मक्का और अल्फाल्फा के भोजन में ज़ैंथोफिल की मात्रा बढ़ाने के लिए किया जाता है ताकि चारे में ज़ैंथोफिल की मात्रा स्थिर रहे।

कई टैगेटेस प्रजाति के गेंदे टैगेटेस तेल का उत्पादन करते हैं, जो एक शक्तिशाली, सुगंधित तेल है जिसका उपयोग सौंदर्य प्रसाधन और सुगंध उद्योगों में किया जाता है। ताजे फूलों के तेल रीढ़ की हड्डी की मज्जा पर विकृत प्रभाव डाल सकते हैं। निकाले गए गेंदे के तेल का उपयोग बेचैनी से राहत देने और जीवाणुजनित कान के संक्रमण के इलाज के लिए किया जाता है। शोधकर्ताओं ने पता लगाया है कि गेंदे के फूल के फ्लेवोनोइड्स में कोलन कैंसर, ल्यूकेमिया और मेलेनोमा कोशिकाओं पर सूजन-रोधी, साइटोटोक्सिक और निरोधात्मक प्रभाव होते हैं। गेंदे का फूल अपने कई चिकित्सीय गुणों के कारण फार्मा उद्योग में अक्सर उपयोग किया जाता है। आजकल, कपड़ों में पर्यावरण के अनुकूल और सड़ने वाली सामग्री के उपयोग को लेकर दुनिया भर में चिंता के साथ, निर्माताओं ने पर्यावरण के अनुकूल और बायोडिग्रेडेबल रंगों का उपयोग करना चुना है। इस प्रकार, कपड़ा उद्योग में प्राकृतिक रंगों की उच्च मांग है क्योंकि गेंदा विभिन्न रंगों, जैसे नारंगी, पीला, भूरा, आदि प्रदान करता है। गेंदे से रंग निकालने का दूसरा उद्देश्य पर्यावरण प्रदूषण को कम करना है।

निष्कर्ष

गेंदे के फूलो का अपशिष्ट न केवल पर्यावण प्रदूषण का कारण बनता है बल्कि यदि उचित रूप से उपयोग किया जाए तो यह अनेक औधोगिक, औषधीय और पर्यावरणीय दृष्टि से मूल्यवान उत्पादों का स्रोत भी बन सकता है। गेंदे की विभिन्न प्रजातियां जैसे अफ्रीकी गेंदा और फ्रांसीसी गेंदा ल्यूटिन, कैरोटीनॉयड, फ्लेवोनोइड्स तथा सुगंध तेलों के समृद्ध स्रोत है, जिनका उपयोग औषधि, प्रसाधन, खाद्य, कपडा और सुगंध उद्योगों में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, गेंदा का पौधा फाइटोरेमेडिएशन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो प्रदूषित मिट्टी से भारी धातुओं को अवशोषित कर पर्यावरण को स्वच्छ बनाता है। गेंदा अपशिष्ट से अगरबत्ती, बायोगैस, वर्मीकम्पोस्ट और प्राकृतिक रंग जैसे कई मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किये जा सकते है, जो सतत विकास और परिपत्र जैव अर्थव्यवस्था की दिशा में एक प्रभावी कदम है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

मोबाइल एप्स के माध्यम से बागवानी फसलों की देख रेख एवं प्रबंधन

प्रियंका धुर्वे[1] एवं सुखलाल वास्केल[2]*

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, कटनी

[2]कृषि विज्ञान केंद्र, सागर II

पत्राचारकर्ता: sukhlalwaskel98@gmail.com

परिचय

भारत में बागवानी कृषि क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। फलों, फूलों, सब्जियों और औषधीय पौधों की खेती किसानों की आय बढ़ाने और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में मदद करती है। लेकिन बागवानी में किसानों को अक्सर कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि मौसम के अनियमित बदलाव, पौधों में रोग और कीट का प्रकोप, मिट्टी की गुणवत्ता, सिंचाई की जरूरतें और बाजार मूल्य की अनिश्चितता। परंपरागत सलाह प्रणाली जैसे कृषि विशेषज्ञ की यात्रा, किताबें और प्रशिक्षण कार्यक्रम हमेशा सभी किसानों तक समय पर जानकारी नहीं पहुंचा पाते। ऐसे में मोबाइल एप्स आधारित सलाह प्रणाली किसानों के लिए एक प्रभावी और आधुनिक समाधान बन गई है। यह प्रणाली किसानों को उनकी फसलों, मिट्टी, मौसम और बाजार की जानकारी वास्तविक समय में प्रदान करती है, जिससे वे सटीक निर्णय लेकर अपनी पैदावार और आय बढ़ा सकते हैं।

मोबाइल ऐप्स की विशेषताएं

1. कीट और रोग पहचानः किसान अपने पौधों की तस्वीर एप में अपलोड कर सकते हैं। एप्स की मदद से पौधों में कीट या रोग की पहचान होती है और एप्स के माध्यम से तुरंत उपचार और रोकथाम के उपाय सुझाए जाते हैं।

2. मौसम और सिंचाई सलाहः मोबाइल एप्स किसानों को सटीक मौसम पूर्वानुमान और वर्षा/सूखा जानकारी प्रदान करते हैं। इससे फसल के लिए सही समय पर सिंचाई और प्रबंधन करना आसान हो जाता है।

3. मिट्टी और पोषण सलाहः एप्स मिट्टी की जांच और पोषक तत्वों के आधार पर उचित उर्वरक और बीज के सुझाव देते हैं। इससे पौधों की गुणवत्ता और पैदावार बढ़ती है।

4. बाजार मूल्य और बिक्री मार्गदर्शनः किसान मोबाइल एप्स के माध्यम से स्थानीय और राष्ट्रीय बाजारों में बागवानी उत्पादों की कीमतों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इससे वे सही समय पर बिक्री करके अधिक लाभ कमा सकते हैं।

5. सरकारी योजनाओं और सब्सिडीः एप्स किसानों को बागवानी से जुड़ी सरकारी योजनाओं, सब्सिडी और लाभकारी कार्यक्रमों की जानकारी प्रदान करते हैं।

6. साझा अनुभव और नेटवर्किंगः कई एप्स किसानों को विशेषज्ञों और अन्य किसानों से जोड़ते हैं। इससे किसान अपने अनुभव साझा कर सकते हैं और समस्याओं का सामूहिक समाधान ढूंढ सकते हैं।

मोबाइल एप्स के लाभ

- किसान घर बैठे ही विशेषज्ञ सलाह प्राप्त कर सकते हैं। पारंपरिक मार्गदर्शन के लिए आवश्यक समय और मेहनत की बचत होती है।
- समय पर सही निर्णय लेने से पौधों की पैदावार और गुणवत्ता बढ़ती है।
- सही मात्रा में उर्वरक और कीटनाशक उपयोग करने से उत्पादन लागत कम होती है।
- बाजार मूल्य और बिक्री संबंधित जानकारी से किसान अपने उत्पाद को सही समय और मूल्य पर बेचकर अधिक लाभ कमा सकते हैं।
- मोबाइल एप्स का उपयोग करके किसान डिजिटल तकनीक और स्मार्टफोन का ज्ञान बढ़ाते हैं, जिससे वे अन्य डिजिटल सेवाओं का लाभ भी उठा सकते हैं।

चुनौतियाँ और सीमाएँ

- कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में किसान स्मार्टफोन और एप्स का सही उपयोग नहीं कर पाते।
- दूरदराज़ क्षेत्रों में नेटवर्क की कमी एप्स के प्रभाव को सीमित करती है।
- एप्स का उपयोग स्थानीय भाषाओं में न होने पर किसानों के लिए इसे समझना मुश्किल हो सकता है।
- सभी एप्स की सलाह विश्वसनीय नहीं होती, जिससे गलत निर्णय लेने का जोखिम रहता है।

भारत में एप्स के उदाहरण

1. mKisan: यह SMS और एप के माध्यम से बागवानी और कृषि से संबंधित जानकारी प्रदान करता है।

2. AgriApp: यह फसल रोग पहचान, वीडियो गाइड और विशेषज्ञ सलाह उपलब्ध कराता है।

3. e-Krishi: यह कृषि प्रबंधन, बाजार मूल्य और फसल सलाह प्रदान करता है।

इन एप्स ने कई राज्यों में किसानों की पैदावार, उत्पादकता और लाभ में सुधार करने में मदद की है।

भविष्य की संभावनाएँ

1. AI और Machine Learning: एप्स किसानों को व्यक्तिगत और सटीक सलाह देने में सक्षम होंगे।

2. ऑफ़लाइन सुविधा (Offline Functionality): बिना इंटरनेट के भी एप्स उपयोगी जानकारी प्रदान करेंगे।

3. IoT और स्मार्ट सेंसर का उपयोगः खेत में सेंसर डेटा के आधार पर वास्तविक समय सलाह।

4. सामूहिक निर्णय प्रणालीः डेटा साझा करके समूह में निर्णय लेना।

निष्कर्ष

मोबाइल एप्स आधारित सलाह प्रणाली बागवानी में किसानों के लिए एक क्रांतिकारी तकनीक है। यह फसल प्रबंधन, कीट नियंत्रण, सिंचाई और बाजार मूल्य निर्धारण में मदद करती है। डिजिटल तकनीक और मोबाइल एप्स के माध्यम से किसान अधिक स्वतंत्र, सशक्त और आत्मनिर्भर बनते हैं। भविष्य में AI, IoT और मशीन लर्निंग जैसी तकनीकें इसे और भी प्रभावी बनाएंगी। इस प्रणाली के माध्यम से न केवल किसानों का आर्थिक सशक्तिकरण होगा, बल्कि पूरे कृषि क्षेत्र में स्थायी और स्मार्ट विकास की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम उठाए जा सकते हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

WhatsApp, YouTube और IVR किसानों तक नई कृषि तकनीक पहुँचाने के डिजिटल सेतु

कु. अंजना गुप्ता*, रश्मि शुक्ला, डी. के. सिंह, निहारिका शुक्ला एवं ए. के. सिंह

कृषि विज्ञान केंद्र, जबलपुर

पत्राचारकर्ताः Blogger.sp2020@gmail.com

परिचय

कृषि भारत की रीढ़ है, जो देश की 60% से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। लेकिन आज के समय में खेती केवल परंपरागत ज्ञान पर नहीं चल सकती। बदलते मौसम, बढ़ती जनसंख्या, बाजार की अनिश्चितता और नए कीट-रोग जैसी चुनौतियाँ किसानों को आधुनिक तकनीक अपनाने के लिए प्रेरित कर रही हैं। इसी संदर्भ में ICT (Information & Communication Technology) यानी सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी किसानों तक नई जानकारी पहुँचाने का प्रभावी माध्यम बनकर उभरी है। स्मार्टफोन और इंटरनेट की पहुँच बढ़ने से WhatsApp, YouTube और IVR जैसी सेवाएँ किसानों तक न केवल नवीनतम तकनीक पहुँचा रही हैं बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर और प्रतिस्पर्धी भी बना रही हैं।

WhatsApp की भूमिका किसानों तक तकनीक पहुँचाने में

क) त्वरित संचार (Instant Communication)

- WhatsApp ग्रुप्स और ब्रॉड कास्टलिस्ट्स के माध्यम से कृषि विशेषज्ञ किसान भाइयों तक रियल-टाइम जानकारी पहुँचा सकते हैं।
- जैसे ही मौसम विभाग अलर्ट जारी करता है, किसान तक वह सूचना तुरंत पहुँच सकती है।

ख) फोटो और वीडियो शेयरिंग

- किसान अपने खेत की समस्या (कीट या रोग की तस्वीर) सीधे कृषि विशेषज्ञ को भेज सकता है और तुरंत समाधान प्राप्त कर सकता है।
- किसान इस ऐप के द्वारा अपनी खेत की समस्या की फोटो या वीडियो सीधे विशेषज्ञ को भेजकर समाधान प्राप्त कर सकते है।

ग) सामुदायिक ज्ञान साझा करना

- WhatsApp ग्रुप्स में किसान आपस में अनुभव साझा करते हैं।

उदाहरणः किसी किसान ने 'ड्रिप इरिगेशन' तकनीक अपनाई तो वह अपने अनुभव और फोटो बाकी किसानों से साझा कर सकता है।

घ) सरकारी योजनाओं का प्रचार

- कई राज्य सरकारें और कृषि विश्वविद्यालय WhatsApp हेल्पलाइन चलाते हैं।
- जैसे WhatsApp Kisan Helpdesk के माध्यम से किसानों को योजनाओं और सब्सिडी की जानकारी मिलती है।

YouTube की भूमिका किसानों को शिक्षित करने में

क) दृश्य आधारित शिक्षा

- किसान अक्सर लिखित सामग्री की बजाय देखकर ज्यादा सीखते हैं। किसान वीडियो द्वारा खेती के तकनीक विभिन्न खाद के नाम, कीटनाशकों आदि के बारे सीधा जान पाते हैं।
- YouTube पर कृषि विशेषज्ञ तकनीक को लाइव डेमो द्वारा समझाते हैं, जिससे किसान को आसानी होती है।

ख) बहुभाषीय सामग्री

- YouTube पर हिंदी, तमिल, तेलुगू, मराठी, पंजाबी आदि कई क्षेत्रीय भाषाओं में कृषि वीडियो उपलब्ध होता हैं।
- इससे भाषा की बाधा दूर होती है और किसान अपनी मातृ भाषा में तकनीको को असानी से समझ पाता है।

ग) सफल किसानों की कहानियाँ

- कई YouTube चैनल सफल किसानों के अनुभव को साझा करते हैं।

- यह बाकी किसानों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनता है।

घ) बाज़ार और मूल्य जानकारी

- YouTube चैनलों के माध्यम से किसान बाजार की नवीनतम स्थिति, बीज-खाद कंपनियों के उत्पाद और सरकारी नीतियों की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

IVR (Interactive Voice Response) की भूमिका

क) सुलभता

- सभी किसानों के पास स्मार्टफोन या इंटरनेट नहीं है, खास कर ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में स्मार्टफोन का प्रयोग नहीं होता है । ऐसे में IVR एक साधारण मोबाइल या लैंडलाइन से भी उपयोग किया जा सकता है।

ख) स्थानीय भाषाओं में सेवा

- IVR सेवाएँ स्थानीय भाषाओं में संदेश देती हैं, जिससे किसान आसानी से समझ पाते हैं।
- **उदाहरणः** मौसम पूर्वानुमान, कीट नियंत्रण सलाह, सरकारी योजनाओं की जानकारी।

ग) समय की बचत

- किसान बिना किसी अधिकारी के पास गए या कृषि केंद्र में लाइन लगाए, केवल कॉल करके जानकारी पा सकता है।
- **उदाहरण**ः भारत सरकार का Kisan Call Centre 1/41800-180-15511/2 IVR आधारित है। इसमें किसान सवाल पूछ सकते हैं और विशेषज्ञ से सलाह प्राप्त कर सकता है।

WhatsApp, YouTube और IVR के सम्मिलित लाभ

- **तेजी से सूचना का आदान-प्रदानः** समय पर जानकारी मिलने से किसान फसल बचा पाता है।
- **कम लागतः** यह सेवाएँ लगभग मुफ्त या बहुत सस्ती हैं।
- **प्रशिक्षण का विकल्पः** किसान बिना यात्रा किए ही डिजिटल प्लेटफॉर्म से सीख सकता है।
- **पारदर्शिताः** सरकारी योजनाओं और बाजार मूल्य की सही जानकारी मिलती है।
- **सामुदायिक सहयोगः** WhatsApp YouTube और IVR की साहयता से किसान-किसान के बीच नेटवर्किंग और सहयोग बढ़ता है।

चुनौतियाँ और सीमाएँ

- **डिजिटल साक्षरता की कमीः** ग्रामीण इलाकों में कई किसान स्मार्टफोन चलाने में असहज होते हैं।
- **नेटवर्क और इंटरनेट समस्याः** दूर दराज के इलाकों में कनेक्टिविटी बहुत कमजोर होता है।
- **फेक न्यूज और गलत जानकारीः** WhatsApp और YouTube पर अफवाहें भी फैलती हैं, जिससे किसान गुमराह हो सकते हैं।
- **भाषाई विविधताः** सभी भाषाओं में समान गुणवत्ता की सामग्री उपलब्ध नहीं होती।
- **व्यक्तिगत संपर्क की कमीः** ICT सेवाएँ जरूरी हैं लेकिन हर समस्या का समाधान व्यक्तिगत निरीक्षण से ही होता है।

सलाह और समाधान

- डिजिटल साक्षरता अभियान चलाना आवश्यक है ताकि किसान ICT का सही उपयोग कर सके।
- सरकार और NGOs को प्रमाणिक और स्थानीय भाषा में सामग्री तैयार करनी चाहिए।
- Fact & checking tools लागू करना चाहिए ताकि गलत जानकारी न फैले।
- Hybrid मॉडल अपनाना चाहिए ICT + field demonstration मिलक रही बेहतर परिणाम देंगे।
- 5G और ग्रामीण इंटरनेट से ICT सेवाएँ और तेज व सुलभ बनेंगी।

निष्कर्ष

WhatsApp, YouTube और IVR जैसी ICT सेवाएँ किसानों तक नई तकनीक पहुँचाने में क्रांतिकारी भूमिका निभा रही हैं। जहा WhatsApp से त्वरित संचार संभव है, वहीं YouTube किसानों को दृश्य आधारित प्रशिक्षण देता है। IVR सेवाएँ उन किसानों के लिए वरदान हैं जिनके पास स्मार्टफोन या इंटरनेट नहीं है। हालाँकि, चुनौतियाँ अभी भी हैं। जैसे डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट कनेक्टिविटी और गलत जानकारी का खतरा। लेकिन यदि सरकार, कृषि वैज्ञानिक और किसान मिलकर ICT का सही उपयोग करें तो भारतीय कृषि और अधिक आधुनिक, उत्पादक और टिकाऊ बन सकती है।

अतः कहा जा सकता है कि ICT सेवाएँ, विशेषकर WhatsApp, YouTube और IVR किसानों के लिए नई तकनीक और ज्ञान का डिजिटल पुल (Digital Bridge) साबित हो रही हैं।

सन्दर्भ

1. https://mkisan.gov.in
2. https://www.fao.org/digital-agriculture
3. https://blog.google/intl/en-in

❖❖

ISSN No. 2583-3316

स्मार्ट सिंचाई प्रणालीः आधुनिक कृषि की दिशा

अंजना गुप्ता[1]* एवं आर. एल. राउत[2]

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, जबलपुर एवं [2]कृषि विज्ञान केंद्र, छिंदवाडा, तामिया

पत्राचारकर्ता: Blogger.sp2020@gmail.com

परिचय

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में सिंचाई का महत्व असाधारण है। खेती योग्य भूमि का बड़ा हिस्सा आज भी मानसून आधारित वर्षा पर निर्भर करता है। परंतु बदलते मौसम, असमान वर्षा वितरण और जल संसाधनों की कमी ने किसानों को सिंचाई के आधुनिक साधनों की ओर मोड़ा है। परंपरागत सिंचाई पद्धतियों में अधिक पानी खर्च होता है और उत्पादन लागत भी बढ़ती है। इसी चुनौती का समाधान के लिए स्मार्ट सिंचाई प्रणाली (Smart Irrigation Systems) का उपयोग किया जाने लगा।

स्मार्ट सिंचाई प्रणाली ऐसी तकनीक है जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी (ICT), सेंसर, IoT (Internet of things), कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मोबाइल एप्लीकेशन का उपयोग करके पानी का वैज्ञानिक और संतुलित प्रयोग किया जाता है। इसका उद्देश्य है - कम से कम पानी में अधिकतम उत्पादन करना।

स्मार्ट सिंचाई प्रणाली क्या है?

स्मार्ट सिंचाई प्रणाली वह पद्धति है, जिसमें सेंसर और डिजिटल तकनीक के माध्यम से मिट्टी की नमी, मौसम की स्थिति, तापमान और फसल की जरूरतों के आधार पर स्वचालित (automatic) तरीके से सिंचाई की जाती है। इसमें पानी की मात्रा उतनी ही दी जाती है, जितनी फसल को आवश्यकता होती है।

उदाहरण के लिए

- अगर मिट्टी में पर्याप्त नमी है तो प्रणाली पानी देना रोक देगी।
- अगर मौसम विभाग से बारिश की संभावना है तो यह प्रणाली सिंचाई स्थगित कर सकती है।
- मोबाइल ऐप से किसान कहीं भी बैठे-बैठे सिंचाई को नियंत्रित कर सकता है।

स्मार्ट सिंचाई प्रणाली की प्रमुख तकनीकें

क) सेंसर आधारित सिंचाई

मिट्टी की नमी, तापमान और आर्द्रता मापने वाले सेंसर लगाए जाते हैं। जैसे ही नमी कम होती है, सिंचाई स्वतः शुरू हो जाती है।

ख) ड्रिप इरिगेशन

पानी सीधे पौधे की जड़ों तक पहुँचाया जाता है। इससे वाष्पीकरण और रिसाव से होने वाला पानी का नुकसान कम होता है।

ग) स्प्रिंकलर प्रणाली

यह वर्षा जैसी कृत्रिम सिंचाई प्रणाली है। बगीचों और सब्जियों की खेती में विशेष उपयोगी होती है।

घ) IoT और मोबाइल नियंत्रित सिंचाई

इंटरनेट और मोबाइल एप्लीकेशन की मदद से किसान सिंचाई को कहीं से भी नियंत्रित कर सकता है।इससे पानी की कम खपत, समय और ऊर्जा की बचत होती है।

ङ) क्लाउड आधारित डेटा विश्लेषण

मौसम विभाग और सेंसर से प्राप्त आंकड़ों का क्लाउड प्लेटफार्म पर विश्लेषण किया जाता है। इससे फसल को उपयुक्त समय पर पानी देने की योजना बनती है।

स्मार्ट सिंचाई प्रणाली के लाभ

क) जल संरक्षण

परंपरागत सिंचाई में 50-60% पानी बर्बाद हो जाता है जबकि स्मार्ट सिस्टम से 30-40% तक पानी की बचत संभव है।

ख) ऊर्जा की बचत

सिंचाई पंप और मोटर का उपयोग आवश्यकता अनुसार ही होता है। जिससे बिजली और डीजल की खपत घटती है।

ग) उत्पादन में वृद्धि

पौधों को आवश्यकतानुसार नमी मिलने से उनकी वृद्धि बेहतर

होती है। जिससे फसल की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों बढ़ते हैं।

घ) लागत में कमी

पानी, बिजली, श्रम और उर्वरक पर होने वाला अतिरिक्त खर्च घटता है। अतः लंबी अवधि में यह प्रणाली किसानों के लिए लाभकारी होती है।

ङ) पर्यावरण संरक्षण

कम पानी के प्रयोग से भूजल का स्तर सुरक्षित रहता है। साथ ही साथ उर्वरक और कीटनाशक सीधे जड़ों तक पहुँचते हैं, जिससे मिट्टी और जल प्रदूषण घटता है।

स्मार्ट सिंचाई प्रणाली से जुड़े उन्नत अनुप्रयोग

क) ड्रोन तकनीक

- खेत की नमी और स्वास्थ्य की निगरानी करने के लिए ड्रोन का प्रयोग किया जाता है। इससे रियल-टाइम डेटा किसान तक पहुँचता है।

ख) कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI)

- फसल की जरूरत के अनुसार पानी की मात्रा का अनुमान लगाया जाता है।
- सिंचाई पैटर्न का विश्लेषण कर भविष्य की योजना बनायी जाती है।

ग) ब्लॉकचेन और डेटा पारदर्शिता

- किसानों के बीच जल उपयोग की जानकारी साझा की जाती है।
- जल संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग में सहायक होती है।

घ)स्मार्ट उर्वरक प्रबंधन

- पानी के साथ तरल उर्वरक सीधे पौधों तक पहुँचाती (फर्टिगेशन)है। जिससे संतुलित पोषण और उच्च गुणवत्ता वाली फसल प्राप्त होती है।

भारत में स्मार्ट सिंचाई की स्थिति

- भारत सरकार ने प्रधान मंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) शुरू की है, जिसका उद्देश्य है - 'हर खेत को पानी'।
- माइक्रो इरिगेशन (ड्रिप और स्प्रिंकलर) को बढ़ावा देने के लिए सब्सिडी प्रदान की जा रही है।
- कई राज्य सरकारें किसानों को सेंसर आधारित सिंचाई प्रणाली उपलब्ध करा रही हैं।
- निजी क्षेत्र की कंपनियाँ मोबाइल ऐप आधारित स्मार्ट इरिगेशन सेवाएँ दे रही हैं।

स्मार्ट सिंचाई की चुनौतियाँ

- प्रारंभिक निवेश अधिक होने से छोटे और सीमांत किसान इसका उपयोग नहीं कर पाते।
- ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण किसानों में तकनीकी जानकारी की कमी होती है।
- जानकारी की कमी के कारण किसानों को उपकरणों की देखभाल और मरम्मत में कठिनाई होती है।
- कई क्षेत्रों में बिजली और इंटरनेट की उपलब्धता सीमित है।

जिसके कारण इन उपकरणों का संचालन करने में मुश्किलें आती है।

समाधान और संभावनाएँ

- सरकार को स्मार्ट सिंचाई उपकरणों पर अधिक सब्सिडी और आसान ऋण उपलब्ध कराना चाहिए।
- किसानों को प्रशिक्षण देकर तकनीकी ज्ञान बढ़ाना आवश्यक है।
- स्थानीय स्तर पर सेंसर और उपकरणों का उत्पादन बढ़ाकर लागत कम की जा सकती है।
- सौर ऊर्जा आधारित सिंचाई प्रणाली को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- निजी कंपनियों और स्टार्टअप्स को कृषि क्षेत्र में निवेश के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

स्मार्ट सिंचाई प्रणाली केवल एक तकनीकी प्रयोग नहीं है, बल्कि यह जल संरक्षण, ऊर्जा बचत और कृषि उत्पादकता बढ़ाने की दिशा में क्रांति है। भारत जैसे विशाल कृषि देश के लिए यह प्रणाली भविष्य का आधार बनेगी। सही नीतियों, प्रशिक्षण और संसाधनों की उपलब्धता के साथ, स्मार्ट सिंचाई हर किसान की पहुँच में आ सकती है। यह न केवल कृषि को टिकाऊ (sustainable) बनाएगी, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए जल संसाधनों को सुरक्षित भी करेगी।

संदर्भ

1. https://www.sciencedirect.com/science/article
2. https://www.scirp.org/journal/
3. https://www.researchgate.net/publication/

❖❖

ISSN No. 2583-3316

फल उत्पादन में प्राकृतिक खेती की भूमिका

यश्मी यादव*, अतुल कुमार रावत, सचिन कुमार सिंह, अंतरिक्ष देशवाल, शुभम यादव एवं धर्मेंद्र कुमार

फल विज्ञान विभाग, औद्यानिकी महाविद्यालय, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

पत्राचारकर्ता: yashmiyadav47@gmail.com

परिचय

भारतीय उद्यानिकी में कई वर्षों से उत्पादकता बढ़ाना ही मुख्य लक्ष्य रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग किया गया। 20वीं शताब्दी में प्रौद्योगिकीय उन्नति ने अनेक उद्योगों की तरह उद्यानिकी क्षेत्र को भी प्रभावित किया। परंतु समय बीतने के साथ यह स्पष्ट होता गया कि इन आधुनिक तकनीकों के दुष्प्रभाव भी हैं- जैसे पौधों की पोषण एवं औषधीय गुणवत्ता में गिरावट, जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम में अस्थिरता, मृदा की उर्वरता में कमी, जल की कमी तथा जल स्रोतों का प्रदूषण। वर्तमान परिस्थिति में, बिगड़ते जलवायु परिदृश्य और सीमित होते संसाधनों के बीच किसान बढ़ती जनसंख्या की मांग पूरी करने की चुनौती से जूझ रहे हैं। दीर्घकाल में, विशेषकर जलवायु ताप वृद्धि, भारत में किसानों की आय को लगभग 20–25% तक कम कर सकती है। यह समस्या देश में प्रचलित जल संकट और खाद्य पदार्थों की बर्बादी से और भी गंभीर हो जाती है।

प्राकृतिक ऊर्जा संसाधनों का क्षय और बढ़ता वैश्विक ऊष्मा संकट कंपनियों पर भी दबाव डाल रहा है कि वे ऐसे उत्पाद विकसित करें जो अंतरराष्ट्रीय मानकों पर खरे उतरें।

संक्षेप में कहा जाए तो प्राकृतिक खेती और इससे जुड़े समाधान, प्रकृति की उस क्षमता को उपयोग में लाने का प्रयास हैं, जिसके माध्यम से पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ मानव की चुनौतियों को हल कर सकती हैं-इस मामले में खाद्य उत्पादन। प्राकृतिक खेती, जिसे कभी-कभी परंपरागत खेती भी कहा जाता है, एक ऐसी पद्धति है, जिसमें रसायनों का उपयोग नहीं किया जाता और यह पूर्णतः कृषि-पर्यावरणीय दृष्टिकोण पर आधारित है।

प्राकृतिक खेती का विविधीकृत स्वरूप

प्राकृतिक खेती को एक विविधीकृत कृषि प्रणाली माना जाता है, जिसमें पशु, वृक्ष और फसलें आपसी ताल-मेल के साथ इस प्रकार जोड़ी जाती हैं कि जैव विविधता का संरक्षण भी हो। विशेषज्ञों का मानना है कि प्राकृतिक खेती उत्पादन लागत को कम करने और बाजार से आवश्यक कृषि-आधार की निर्भरता घटाने की सबसे आशाजनक तकनीकों में से एक है यह कृषि-पारिस्थितिकी पर आधारित प्रणाली न केवल पर्यावरणीय बल्कि सामाजिक-आर्थिक स्तर पर भी अनेक लाभप्रदान करती है। प्राकृतिक खेती, जिसे कभी-कभी परंपरागत खेती भी कहा जाता है, रसायनों से मुक्त है और इसमें पशुपालन, वृक्षारोपण तथा फसल उत्पादन का समन्वय किया जाता है। हालाँकि जैव-गतिक खेती प्राकृतिक खेती से अलग है, फिर भी इस सतत कृषि, कृषि-पर्यावरणीय पद्धति, कृषि-वनीकरण, पर्माकल्चर, जैविक खेती (बिना प्रमाणन के), उर्वरता-आधारित खेती और पारिस्थितिक कृषि से तुलनीय माना जा सकता है।

प्राकृतिक खेती वास्तव में एक आधुनिक दृष्टिकोण है, जो पारंपरिक एवं आधुनिक कृषि तकनीकों का संतुलन बनाकर न केवल समुदायों और पर्यावरण की रक्षा करता है, बल्कि मानव स्वास्थ्य को भी सुरक्षित रखता है। सतत कृषि के ये दृष्टिकोण हमें ऐसा भोजन उत्पादन सुनिश्चित करते हैं, जिससे भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं को खतरा न पहुँचे। इसी संदर्भ में उद्यानिकी फसलों के उत्पादन में प्राकृतिक खेती की संभावनाओं और उपयोगों पर जानकारी एकत्रित करने का प्रयास किया गया है खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) का अनुमान है कि वैश्विक स्तर पर बढ़ती जनसंख्या और मध्यम वर्ग की तीव्र होती मांग को पूरा करने के लिए कृषि क्षेत्र में ऐसे मॉडल आवश्यक हैं जो सतत उत्पादन क्षमता प्रदान करें।

वैश्विक खाद्य उत्पादन की चुनौती और प्राकृतिक खेती

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार वर्ष 2050 तक खाद्य उत्पादन में लगभग 70% की वृद्धि आवश्यक होगी। अनुमान है कि

2030 तक भारत की जनसंख्या 1.51 अरब के पार पहुँचकर विश्व में सबसे अधिक हो जाएगी। इस परिदृश्य में प्राकृतिक खेती के मुख्य उद्देश्य हैं-मृदा की उर्वरता में सुधार, पर्यावरण का संरक्षण, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी और किसानों की आय में वृद्धि। विस्तृत दृष्टि से देखा जाए तो प्राकृतिक खेती एक ऐसा उपाय है जो पृथ्वी को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। आँकड़े बताते हैं कि आंध्र प्रदेश में अधिकांश किसानों ने पिछले पाँच वर्षों में ही प्राकृतिक खेती की पद्धतियाँ अपनाई हैं, जबकि कर्नाटक के कुछ किसान पिछले 15 वर्षों से इस पद्धति का सफलता पूर्वक प्रयोग कर रहे हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह माना जाता है कि वर्ष 2002 में कर्नाटक राज्य में जमीनी स्तर पर एक आंदोलन प्रारंभ हुआ था, जिसमें कर्नाटक राज्य रैथा संघकी सक्रिय भागीदारी रही।

भारत में प्राकृतिक खेती की संभावनाएँ

आज की आधुनिक सभ्यताएँ एक ऐसे विश्व में रह रही हैं जहाँ लगभग 38% भूमि कृषि कार्यों में प्रयुक्त हो रही है। विश्व के कुल 95% से अधिक खाद्य उत्पादन के लिए मनुष्य मुख्यतः मृदा की क्षमता पर ही निर्भर है। किंतु यही कृषि प्रणाली बड़े पैमाने पर जैवजनित ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का कारण भी बनती है और मृदा व पर्यावरणीय क्षरण में प्रमुख योगदान देती है। इसके पीछे कई कारण हैं, जैसे-वनों की कटाई, अत्यधिक चराई, गहन जुताई तथा अनुचित कृषि पद्धतियाँ। भारत में उर्वरकों का प्रयोग तेज़ी से बढ़ा है, वहीं खरपतवार, फफूँद और कीट-पतंगों से फसलों की रक्षा के लिए कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अनुमान है कि बीमारियों, खरपतवार और कीटों के कारण संभावित कृषि उत्पादन का लगभग 15–25% हिस्सा नष्ट हो जाता है। लेकिन कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से दीर्घकाल में पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र दोनों ही कमजोर हो जाते हैं। इसके विपरीत, प्राकृतिक खेती ऐसी पद्धति है, जो वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के लिए पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षित करने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में प्राकृतिक खेती

वैश्विक स्तर पर यह व्यापक सहमति बन रही है कि वर्तमान कृषि प्रणालियों की जगह धीरे-धीरे अधिक सतत् कृषि पद्धतियों को अपनाना आवश्यक है। कीटनाशकों के लापरवाह और अत्यधिक उपयोग के दुष्प्रभाव उपभोक्ताओं को इस ओर प्रेरित कर रहे हैं कि वे खाद्य पदार्थों पर 'जैविक' लेबल को प्राथमिकता दें। इसलिए अब आवश्यक हो गया है कि कृषि क्षेत्र का ध्यान प्राकृतिक और पर्यावरण-अनुकूल तरीकों की ओर केंद्रित किया जाए तथा ऐसी विविध रणनीतियाँ अपनाई जाएँ जो हमें सतत कृषि की दिशा में आगे बढ़ाएँ। प्राकृतिक खेती इसी बदलाव का एक सशक्त आधार प्रदान करती है।

कृषि, जैविक खेती तथा अन्य पर्यावरण-आधारित पद्धतियाँ आज सतत् कृषि के लिए महत्त्वपूर्ण विकल्प मानी जा रही हैं। भारत को परंपरागत रूप से जीव विज्ञान, दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्रों में ज्ञान का भंडार माना गया है। कृषि की स्थिरता बढ़ाने के लिए आज सबसे बड़ी चुनौती यह है कि किस प्रकार क्षतिग्रस्त प्राकृतिक संसाधनों की मरम्मत की जाए और आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों के दुष्प्रभाव को कम किया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाए, जिसमें कृषि तंत्र के प्रत्येक घटक-मृदा, जल, पौधे, पशु और मानव-सभी को ध्यान में रखते हुए सुधारात्मक प्रयास किए जाएँ।

प्राकृतिक खेती क्या है?

प्राकृतिक खेती एक जलवायु-लचीली, न्यून-इनपुट और देशज कृषि पद्धति है, जो भारत में सिंथेटिक रसायनों के उपयोग को पूरी तरह समाप्त करने पर जोर देती है। यह किसानों को स्थानीय और सस्ते संसाधनों जैसे मल्च, कवर फसल, गुड़, दाल का आटा, गोबर और गोमूत्र आदि का उपयोग कर मृदा की जैविक गतिविधि और उर्वरता बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है। प्राकृतिक खेती में फसल चक्र, मल्चिंग, कंपोस्टिंग, हरित खाद, इंटरक्रॉपिंग, वृक्ष-इंटरक्रॉपिंग और पशुपालन का एकीकरण जैसी विविध कृषि-पर्यावरणीय तकनीकों को अपनाया जाता है। इसके मुख्य सिद्धांत हैं-पॉलीक्रॉपिंग, सिंथेटिक इनपुट से परहेज़, वर्ष भर मृदा आवरण, स्थानीय बीज का प्रयोग, बायोस्टिमुलेंट का उपयोग, न्यूनतम जुताई और पशुपालन का समेकन। गुजरात, आंध्र प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में यह सबसे अधिक प्रचलित है, जबकि अन्य राज्यों में भी धीरे-धीरे अपनाई जा रही है। सरकार ने वर्ष 2020–21 में भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति (BPKP) कार्यक्रम शुरू किया, जिसमें 6.1 लाख हेक्टेयर भूमि को शामिल किया गया। भारत की विविध कृषि जलवायु और पारंपरिक ज्ञान प्राकृतिक खेती को सफल बनाने में सहायक हैं।

फल फसलों में प्राकृतिक खेती को अपनाना

क) आम में प्राकृतिक खेतीः युवा बागों में हरी खाद या कवर क्रॉप्स और इंटरक्रॉपिंग के लिए दालदार फसलें लगाई

जाती हैं। फल कटाई के बाद, जैविक खाद (30–40 किग्रा/पेड़) NADEP, वर्मी/बायो डायनामिक विधि से पेड़ की तने से 1.5 मीटर दूर खाई में डाली जाती है, खासकर 10 वर्ष या उससे पुराने पेड़ों के लिए। इसके बाद 100 ग्राम काऊ पैट पिट (CPP) डालकर मल्चिंग की जाती है, जिसमें गोमूत्र स्प्रे (BD-500), 3% पंचगव्य और 20% जीवामृत/अमृत पानी शामिल होते हैं। फल कटाई के बाद स्वस्थ विकास और वृद्धि के लिए 15 दिन के अंतराल पर दो बार पत्ती छिड़काव किया जाता है, जिसमें वर्मीवॉश या बायोडायनामिक तरल खाद का उपयोग किया जाता है।

ग) सिट्रस फलों में प्राकृतिक खेतीः सिट्रस में उर्वरक का प्रयोग फल की गुणवत्ता पर गहरा प्रभाव डालता है, इसलिए यह एक महत्वपूर्ण कृषि-पद्धति मानी जाती है। अध्ययन में यह देखा गया कि खाद और उर्वरक प्रबंधन के आधार पर सिट्रस फलों की बाहरी और आंतरिक विशेषताओं में अंतर आता है, विशेष रूप से विटामिन C की मात्रा पर। विभिन्न बागों से प्राप्त फिजियोलॉजिकल रूप से परिपक्व फलों में यह पाया गया किखनिज उर्वरक से फलों का वज़न और व्यास अधिक, छिलके मोटे और रंग अधिक जीवंत होते हैं। इसके विपरीत, जैविक खेती से उगाए गए फलों में मच्योरिटी इंडेक्स कम और घुलनशील ठोस अधिक पाए गए। फसल की प्रतिक्रिया प्रजाति और किस्म के अनुसार भिन्न थी, लेकिन जैविक खेती के फलों में सबसे अधिक विटामिन C पाया गया। जैविक सिट्रस खेती में कंपोस्ट मुख्य उर्वरक स्रोत है। चूँकि कंपोस्ट से नाइट्रोजन का मिनरलाइजेशन धीरे होता है, इसलिए इसे पेड़ों की अनुमानित नाइट्रोजन आवश्यकता से 2-4 सप्ताह पहले लागू करना चाहिए (फूल आने से 2-4 सप्ताह पहले)। यदि नाइट्रोजन की आवश्यकता अधिक हो (>50 किग्रा/हेक्टेयर), तो केवल कंपोस्ट का उपयोग पर्याप्त नहीं है।

ख) अमरूद में प्राकृतिक खेतीः अमरूद को जैविक रूप से उगाना संभव है क्योंकि यह एक उद्यानिकी फसल है और इसके फल आमतौर पर कटाई के बाद ताजे, छिलके और गूदे सहित खाये जाते हैं। विभिन्न उर्वरक, जैविक खाद और जैव-उर्वरक के संयुक्त प्रयोग से अमरूद की वनस्पति वृद्धि, उपज और फल की गुणवत्ता में सुधार पाया गया है।

फल फसलों पर पंचगव्य के लाभकारी प्रभाव

फल फसलों में पंचगव्य का उपयोग अत्यंत लाभकारी माना जाता है। यह गाय के गोबर, गौमूत्र, गाय का दही, दूध और घी से तैयार किया जाता है और मिट्टी की जैविक गतिविधि को बढ़ा कर मृदा उर्वरता में सुधार करता है। पंचगव्य पौधों की जड़ और तने की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है, जिससे वनस्पति विकास बेहतर होता है। इसके नियमित उपयोग से फलों का आकार, रंग, स्वाद और पोषण गुणवत्ता बढ़ती है और पौधों की रोग एवं कीट प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है। साथ ही, यह रासायनिक उर्वरकों और कीटनाश कों की आवश्यकता को कम करता है, जिससे यह पर्यावरण और स्वास्थ्य के अनुकूल एक प्रभावी जैविक खेती पद्धति बन जाता है।विभिन्न फलो में पंचगव्य के क्या प्रभाव होते है उनका वर्णन निम्न लिखित है-

क) आमः पंचगव्य का उपयोग स्त्री फूलों की संख्या बढ़ाता है और पौधों में घना पुष्पन उत्पन्न करता है, जिससे फलों की उत्पादकता में सुधार होता है। पंचगव्य का प्रयोग फलों में गुणवत्ता बनाए रखने की क्षमता बढ़ाता है, जिससे फल कटाई के बाद कमरे के तापमान पर भी लगभग 12 दिन तक ताजगी और गुणवत्ता बनाए रखते हैं।

ख) नींबू (Acid lime): साल भर लगातार फूलना सुनिश्चित होता है और फलों की शेल्फ लाइफ लगभग 10 दिन बढ़ जाती है।

ग) अमरूद (Guava)

- TSS (Total Soluble Solids) अधिक होता है।
- फलों की शेल्फ लाइफ लगभग 5 दिन बढ़ जाती है।

घ) आम (Mango)

- हॉपर्स कीट को नीम तेल का छिड़काव करके नियंत्रित किया जाता है।
- फूलने को बढ़ावा देने और हॉपर्स को भगाने के लिए सुबह सूर्योदय से पहले या शाम को सूर्यास्त के बाद पेड़ के नीचे सूखी पत्तियाँ और डंडियाँ जलाकर धुआँ किया जाता है।
- परागण और फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए आम के पेड़ों के बीच सूरजमुखी उगाई जाती है ताकि मधुमक्खियाँ आकर्षित हों।

ङ) सेब (Apple)

- बाग में अतर फसलें उगायी जाती हैं, जिससे किसान को अतिरिक्त लाभ होता है।
- मिट्टी के क्षरण को रोकने के लिए सोड कल्चर अपनायी जाती है।

च) केला (Banana)

- उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रत्येक पेड़ के सुक्कर में 500

ग्राम मूँगफली का केक डाला जाता है।

♦ केला के गुच्छों को चूने के घोल से धुला जाता है ताकि पकने की प्रक्रिया तेज़ हो।

♦ पकने में मदद के लिए गुच्छों के बीच नीम पत्तियाँ रखी जाती हैं।

♦ हवा के नुकसान से बचाने के लिए केला के खेतों के किनारे से सबानिया के पेड़ लगाए जाते हैं।

♦ नेमाटोड से बचाव हेतु तीसरे और पाँचवें महीने में प्रत्येक सुक्कर पर 150 ग्राम नीम केक पाउडर लगाया जाता है।

ज) अंगूर (Grapes)

♦ फलों को हवा के नुकसान से बचाने के लिए पक्षियों को बावली में स्वतंत्र प्रवेश की अनुमति दी जाती है।

♦ गर्मी की लहरों में अंगूर को जलने से बचाने के लिए बावली के किनारों को नारियल या पाम के पत्तों से ढका जाता है।

झ)अमरूद (Guava)

सफेद मक्खी को नियंत्रित करने के लिए 2 किग्रा कालोट्रोपिस की पत्तियाँ और 3 किग्रा नीम केक को पीसकर 20 लीटर पानी में 4 दिन भिगोया जाता है। फिर इसे 200 लीटर पानी में मिलाकर 50 ग्राम डिटर्जेंट साबुन के साथ एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव किया जाता है।

ञ) मंडारिन ऑरेंज (*Citrus reticulata*)

♦ तने में छेद करने वाले कीट के लिए सिट्रस पेड़ों पर चूने का लेप लगाया जाता है और छेदों को नींबू घास या कपास में भिगोकर सील किया जाता है।

♦ चींटियों के हमले से बचाव के लिए संग्रहित संतरे के बीजों के साथ राख मिलाई जाती है।

प्राकृतिक खेती में मिश्रित फसल उगाने के लाभ

अ) **मृदा उर्वरता में वृद्धिः** एक ही फसल बार-बार उगाने से मिट्टी के कुछ खनिज घट जाते हैं। हर फसल अलग प्रकार के पोषक तत्व छोड़ती और अवशोषित करती है, जिससे मिट्टी के पोषक तत्वों के साथ अनोखा संबंध बनता है। फसल चक्र अधिक या कम पोषक तत्वों को संतुलित करके मिट्टी की उर्वरता बढ़ाता है।

ब) फसल उपज में वृद्धिः विभिन्न फसलों के उपयोग से एक ही मौसम में अधिक और विविध उपज प्राप्त होती है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार, फसल चक्र अपनाने से मोनोकल्चर की तुलना में उपज 10% से 25% तक बढ़ सकती है।

स) मिट्टी के पोषक तत्वों की बहालीः फसल चक्र के माध्यम से मिट्टी स्वयं को पोषक तत्वों से पुनः भर सकती है। पिछले मौसम की फसलों से खोए पोषक तत्वों को मिट्टी अपनी प्राकृतिक प्रक्रिया से पुनः प्राप्त कर सकती है।

द) मृदा अपरदन में कमीः पौधों की जड़ें मिट्टी की ऊपरी परत को बनाए रखती हैं और पानी की बूंदों के प्रभाव से मिट्टी के कटाव को कम करती हैं। फसलों और पेड़ों को साथ-साथ उगाने से मृदा अपरदन में और कमी आती है।

य) मिट्टी की संरचना में सुधारः फसल चक्र मिट्टी के सघन होने से बचाव करता है, जिससे मिट्टी की संरचना बेहतर रहती है और पानी व वायु का संचलन सुचारू होता है।

र) विविधीकरण और उत्पादन लागत में कमीः कुछ फसलें अन्य फसलों की तुलना में कम उपकरण और श्रम के साथ उगाई जा सकती हैं। वर्ष भर कार्यभार और संसाधनों का समान वितरण होने से फसल उत्पादन की कुल लागत कम होती है।

निष्कर्ष

प्राकृतिक खेती और मिश्रित कृषि प्रणालियाँ स्थायी, आर्थिक और पर्यावरणीय दृष्टि से लाभकारी हैं। यह मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने, फसल उपज सुधारने, जैव विविधता बनाए रखने और उत्पादन लागत घटाने में सहायक होती हैं। फसलों और पशुपालन के संयोजन से किसानों की आय में स्थायित्व और जोखिम में कमी आती है। इसके अलावा, देशज तकनीकी ज्ञान और जैविक उत्पादों जैसे पंचगव्य, जीवामृत और कंपोस्ट का उपयोग फसल की गुणवत्ता और बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए, प्राकृतिक खेती और मिश्रित कृषि को अपनाना भविष्य की खाद्य सुरक्षा, आर्थिक लाभ और पर्यावरण संरक्षण के लिए अनिवार्य है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

आय और औषधीय गुणों से भरपूर स्ट्रॉबेरी

यश्मी यादव*, कु. आकांक्षा राय, देवांशु शुक्ला, कृष्णा कौशिक एवं सौरभ

फल विज्ञान विभाग, औद्यानिकी महाविद्यालय, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

पत्राचारकर्ता: yashmiyadav47@gmail.com

परिचय

स्ट्रॉबेरी दुनिया भर में सबसे लोकप्रिय और व्यापक रूप से खपत किए जाने वाले फलों में से एक है। अपनी आकर्षक लाल रंग, मीठे स्वाद और अनूठी सुगंध के कारण यह एक स्वादिष्ट और लोकप्रिय फल है। सदियों से पारंपरिक चिकित्सा में इसका उपयोग विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं के इलाज के लिए भी किया जाता रहा है और आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान भी इसके कई स्वास्थ्य लाभों की पुष्टि करता है। स्ट्रॉबेरी में औषधीय गुण भरपूर मात्रा में होते हैं, जैसे कि यह विटामिन सी और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होता है, जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने और बीमारियों से बचाने में मदद करता है। इसमें पोटेशियम, आयोडीन, फाइटोकेमिकल्स भी होते हैं, जो दिमागी ताकत को बढ़ाते हैं और आंखों की रोशनी को बेहतर बनाते हैं। स्ट्रॉबेरी खाने से पाचन में सुधार होता है और वजन घटाने में भी मदद मिलती है। (संदर्भः जस्ट एग्रीकल्चर)।

स्रोत- एनडीटीवी

स्ट्रॉबेरी के औषधीय गुण

स्ट्रॉबेरी में कई औषधीय गुण होते हैं, जो निम्नलिखित हैः

क) शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट

- स्ट्रॉबेरी एंटीऑक्सीडेंट का एक समृद्ध स्रोत है, जिसमें एंथोसायनिन (जो इसे लाल रंग देता है), एलेजिक एसिड, क्वेरसेटिन, कैटेचिन और केम्पफेरोल शामिल हैं।
- ये एंटीऑक्सीडेंट शरीर में मौजूद हानिकारक मुक्त कणों (free radicals) को निष्क्रिय करने में मदद करते हैं। मुक्त कण कोशिका क्षति का कारण बन सकते हैं और हृदय रोग, कैंसर और उम्र बढ़ने जैसी पुरानी बीमारियों के विकास में योगदान कर सकते हैं।
- एंथोसायनिन विशेष रूप से अपने शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट और सूजनरोधी गुणों के लिए जाने जाते हैं।

ख) हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी

कई अध्ययनों से पता चला है कि स्ट्रॉबेरी का सेवन हृदय स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद हो सकता है।

- **रक्तचाप कम करनाः** स्ट्रॉबेरी में मौजूद फ्लेवोनोइड्स रक्त वाहिकाओं को फैलाने और रक्तचाप को कम करने में मदद करते हैं।
- **कोलेस्ट्रॉल के स्तर में सुधारः** कुछ शोध बताते हैं कि स्ट्रॉबेरी खराब कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने और अच्छे कोलेस्ट्रॉल (HDL) के स्तर को बढ़ाने में मदद करती है।
- **प्लेटलेट एकत्रीकरण को कम करनाः** स्ट्रॉबेरी में मौजूद यौगिक रक्त के थक्के बनने की प्रक्रिया को धीमा कर सकते हैं, जिससे हृदय घात और स्ट्रोक का खतरा कम होता है।

ग) सूजनरोधी गुण

- स्ट्रॉबेरी में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट और अन्य फाइटोकेमिकल्स में शक्तिशाली सूजनरोधी गुण होते हैं।
- यह गठिया, जोड़ों के दर्द और अन्य सूजन संबंधी

स्थितियों के लक्षणों को कम करने में मदद कर सकता है।

- शरीर में पुरानी सूजन को कम करके, स्ट्रॉबेरी कई बीमारियों के खतरे को कम करने में भी भूमिका निभा सकती है।

घ) कैंसर रोधी क्षमता

- कुछ प्रारंभिक शोध से पता चला है कि स्ट्रॉबेरी के अर्क में कैंसर कोशिकाओं के विकास को रोकने की क्षमता होती हैं। यह खासकर पेट, स्तन, गर्भाशय ग्रीवा और कोलन कैंसर कोशिकाओं को खत्म करने का काम करता है।
- इसमें मौजूद एलेजिक एसिड और अन्य यौगिक कैंसर कोशिकाओं के विकास और प्रसार को बाधित करने में मदद करते हैं।
- हालांकि, इस क्षेत्र में और अधिक मानव अध्ययन की आवश्यकता है ताकि स्ट्रॉबेरी की कैंसर रोधी क्षमता को पूरी तरह से समझा जा सके।

घ) रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ावा देना

- स्ट्रॉबेरी विटामिन सी का एक उत्कृष्ट स्रोत है, जो एक शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट है और प्रतिरक्षा प्रणाली के कार्य के लिए आवश्यक है।
- विटामिन सी श्वेत रक्त कोशिकाओं के उत्पादन को बढ़ावा देता है, जो संक्रमण से लड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं।
- नियमित रूप से स्ट्रॉबेरी का सेवन शरीर को बीमारियों और संक्रमणों से बचाने में मदद करता है।

ङ) त्वचा के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी

- स्ट्रॉबेरी में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट त्वचा को ऑक्सीडेटिव क्षति से बचाने और उम्र बढ़ने के संकेतों को कम करने में मदद कर सकते हैं।
- इसमें मौजूद एलेजिक एसिड त्वचा को यू वी किरणों से होने वाले नुकसान से बचाने में भी मदद करता है।
- स्ट्रॉबेरी में प्राकृतिक एक्सफोलिएटिंग गुण होते हैं, जो मृत त्वचा कोशिकाओं को हटाने और त्वचा को साफ और स्वस्थ रखने में मदद करते हैं। इसका उपयोग कुछ घरेलू फेस मास्क और स्क्रब में भी किया जाता है।

च) पाचन स्वास्थ्य में सुधार

- स्ट्रॉबेरी में फाइबर की अच्छी मात्रा होती है, जो स्वस्थ पाचन तंत्र के लिए आवश्यक है।
- फाइबर कब्ज को रोकने और नियमित मल त्याग को बढ़ावा देने में मदद करता है।

छ) आंखों के स्वास्थ्य के लिए संभावित लाभ

- स्ट्रॉबेरी में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट, जैसे कि एंथोसायनिन और विटामिन सी, आंखों को मोतियाबिंद और धब्बेदार अधः पतन जैसी उम्र से संबंधित समस्याओं से बचाने में मदद करते हैं।

स्ट्रॉबेरी का पारंपरिक चिकित्सा में उपयोग

- पारंपरिक चिकित्सा में स्ट्रॉबेरी का उपयोग बुखार, सूजन और त्वचा की समस्याओं के इलाज के लिए किया जाता रहा है।
- इसकी पत्तियों और जड़ों का उपयोग मूत्रवर्धक और कसैले के रूप में भी किया जाता हैं।

सावधानियाँ

- कुछ लोगों को स्ट्रॉबेरी से एलर्जी हो सकती है, जिसके लक्षणों में त्वचा पर चकत्ते, खुजली, सूजन या सांस लेने में कठिनाई शामिल हो सकती है।
- स्ट्रॉबेरी में ऑक्सालेट की मात्रा भी मध्यम होती है, इसलिए गुर्दे की पथरी वाले लोगों को इसका सेवन सीमित मात्रा में करना चाहिए। (संदर्भः एएनआई न्यूज़)

स्ट्रॉबेरी से बने खाद्य पदार्थ

स्ट्रॉबेरी एक ऐसा शानदार फल है, जिससे अनगिनत स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ बनाए जा सकते हैं। इसकी मिठास, थोड़ी सी मनमोहक सुगंध,खटास और मनमोहक रंगत हर तरह के व्यंजन में एक खास स्वाद और आकर्षण जोड़ देती है।

- **स्ट्रॉबेरी और क्रीमः** ताज़ी स्ट्रॉबेरी को ताज़ी क्रीम या व्हीप्ड क्रीम के साथ परोसना एक क्लासिक और लाजवाब संयोजन है।
- **स्ट्रॉबेरी सलादः** हरी पत्तेदार सब्जियों, चीज़ (जैसे फेटा या मोज़ेरेला), नट्स और एक हल्की विनेगर ड्रेसिंग के साथ स्ट्रॉबेरी का सलाद बहुत ताज़ा और स्वादिष्ट होता है।
- **स्ट्रॉबेरी और योगर्टः** सादे या वेनिला योगर्ट के ऊपर ताज़ी कटी हुई स्ट्रॉबेरी और थोड़ा सा शहद या ग्रेनोला डालकर एक स्वस्थ और स्वादिष्ट नाश्ता या मिठाई बनाई जा सकती है।

मिठाई और डेसर्ट

- **स्ट्रॉबेरी शॉर्टकेकः** मीठे बिस्कुट के बीच में ताज़ी

स्ट्रॉबेरी और व्हीप्ड क्रीम की परतें एक क्लासिक और पसंदीदा मिठाई है।

- **स्ट्रॉबेरी पाई और टार्टः** स्ट्रॉबेरी से बनी मीठी पाई और टार्ट बहुत स्वादिष्ट होते हैं और विशेष अवसरों के लिए एकदम सही हैं।
- **स्ट्रॉबेरी क्रम्बल और कोबलरः** गर्म, मीठी स्ट्रॉबेरी के ऊपर कुरकुरा क्रम्बल या नरम कोबलर टॉपिंग एक आरामदायक और स्वादिष्ट मिठाई है।
- **स्ट्रॉबेरी चीज़केकः** क्रीमी चीज़केक के ऊपर ताज़ी स्ट्रॉबेरी या स्ट्रॉबेरी सॉस का संयोजन बहुत लाजवाब होता है।
- **स्ट्रॉबेरी आइसक्रीम और फ्रोजन योगर्टः** गर्मी के दिनों में ठंडी और ताज़ा स्ट्रॉबेरी आइसक्रीम या फ्रोजन योगर्ट बहुत पसंद की जाती है।
- **स्ट्रॉबेरी स्मूदीः** स्ट्रॉबेरी को दूध, योगर्ट, केला और अन्य फलों के साथ ब्लेंड करके एक पौष्टिक और स्वादिष्ट स्मूदी बनाई जा सकती है।
- **स्ट्रॉबेरी मिल्कशेकः** स्ट्रॉबेरी, दूध और आइसक्रीम को मिलाकर एक गाढ़ा और मीठा मिल्कशेक बनाया जाता है।
- **स्ट्रॉबेरी चॉकलेट डिपः** पिघली हुई चॉकलेट में ताज़ी स्ट्रॉबेरी को डुबोकर एक सरल लेकिन शानदार मिठाई बनाई जा सकती है।
- **स्ट्रॉबेरी केक और कपकेकः** स्ट्रॉबेरी के स्वाद वाला केक और कपकेक बहुत स्वादिष्ट होते हैं और इन्हें विभिन्न प्रकार की फ्रॉस्टिंग से सजाया जा सकता है।
- **स्ट्रॉबेरी पैनकेक और वफ़लः** पैनकेक और वफ़ल के बैटर में स्ट्रॉबेरी डालकर या ऊपर से ताज़ी स्ट्रॉबेरी और सिरप डालकर इन्हें और भी स्वादिष्ट बनाया जा सकता है।
- **स्ट्रॉबेरी ट्रिफलः** परतदार केक, कस्टर्ड, व्हीप्ड क्रीम और ताज़ी स्ट्रॉबेरी से बनी ट्रिफल एक शानदार मिठाई है।

पेय पदार्थ

- **स्ट्रॉबेरी जूसः** ताज़ी स्ट्रॉबेरी को ब्लेंड करके और छानकर स्वादिष्ट और ताज़ा जूस बनाया जा सकता है।
- **स्ट्रॉबेरी लेमोनेडः** नींबू पानी में स्ट्रॉबेरी प्यूरी मिलाकर एक ताज़ा और रंगीन पेय बनाया जा सकता है।
- **स्ट्रॉबेरी आइस्ड टीः** आइस्ड टी में स्ट्रॉबेरी का स्वाद मिलाकर एक अनोखा और ताज़ा पेय बनाया जा सकता है।
- **स्ट्रॉबेरी कॉकटेल और मॉकटेलः** स्ट्रॉबेरी का उपयोग विभिन्न प्रकार के अल्कोहलिक और नॉन-अल्कोहलिक कॉकटेल और मॉकटेल में स्वाद और रंग जोड़ने के लिए किया जाता है।
- **स्ट्रॉबेरी सिरपः** ताज़ी पकी हुई स्ट्रॉबेरी को चीनी के साथ पकाया जाता है। फिर इसे छानकर उसका सिरप तैयार किया जाता है।

अन्य व्यंजन

- **स्ट्रॉबेरी सॉसः** मांस, पोल्ट्री या डेसर्ट के लिए एक मीठी और तीखी स्ट्रॉबेरी सॉस बनाई जा सकती है।
- **स्ट्रॉबेरी विनेगरः** स्ट्रॉबेरी को सिरके में भिगोकर एक स्वादिष्ट और फलदार विनेगर बनाया जा सकता है जिसका उपयोग सलाद ड्रेसिंग और अन्य व्यंजनों में किया जा सकता है।
- **सूखी स्ट्रॉबेरीः** स्ट्रॉबेरी को डिहाइड्रेट करके एक स्वादिष्ट और चबाने योग्य स्नैक बनाया जा सकता है जिसका उपयोग ग्रेनोला, ट्रेल मिक्स और बेकिंग में भी किया जा सकता है।

स्ट्रॉबेरी से किसानो को आय में वृद्धि

स्ट्रॉबेरी की खेती किसानों के लिए आय का एक आकर्षक स्रोत बन सकती है, लेकिन यह कई कारकों पर निर्भर करता हैः

स्ट्रॉबेरी से उपज

- प्रति एकड़ उपज स्ट्रॉबेरी की किस्म, खेती की तकनीक (जैसे पारंपरिक बनाम हाइड्रोपोनिक), मिट्टी की गुणवत्ता, जलवायु और प्रबंधन पर निर्भर करती है।
- भारत में, अच्छी प्रबंधन तकनीकों के साथ, प्रति एकड़ 8,000 किलोग्राम तक उपज प्राप्त की जा सकती है। कुछ उन्नत तकनीकों और अनुकूल परिस्थितियों में यह और भी अधिक हो सकता है। कुछ किसान प्रति पौधा 300 ग्राम से 500 ग्राम तक उपज प्राप्त करते हैं।

बाज़ार मूल्य

- स्ट्रॉबेरी का बाज़ार मूल्य मांग, आपूर्ति, गुणवत्ता और क्षेत्र के आधार पर भिन्न होता है।
- आमतौर पर, स्ट्रॉबेरी ₹ 100 से ₹ 200 प्रति किलोग्राम या उससे अधिक कीमत पर बिकती है, खासकर ऑफ-

सीजन में या उच्च गुणवत्ता वाली जैविक स्ट्रॉबेरी इससे अधिक कीमत पर बेचीं जाती है ।

पौधे सामग्रीः स्ट्रॉबेरी के पौधे प्रति एकड़ लगभग 22,000 से 50,000 पौधे लग सकते हैं, जिनकी लागत किस्म और गुणवत्ता के आधार पर भिन्न होती है।

- प्रति एकड़ कुल लागत ₹ 4 लाख से ₹ 6 लाख या इससे अधिक तक जा सकती है, यह खेती की विधि और क्षेत्र पर निर्भर करता है। हाइड्रोपोनिक खेती में प्रारंभिक लागत अधिक हो सकती है लेकिन यह अधिक उपज और बेहतर गुणवत्ता प्रदान कर सकती है।

स्ट्रॉबेरी के खेती के लाभ

- यदि प्रति एकड़ 8,000 किलोग्राम उपज होती है और औसत बिक्री मूल्य ₹ 118 प्रति किलोग्राम है, तो सकल आय ₹ 9.44 लाख हो सकती है।
- खेती की कुल लागत घटाने के बाद, किसान प्रति एकड़ ₹ 3.5 लाख से ₹ 5 लाख या उससे अधिक का शुद्ध लाभ कमा सकते हैं।
- कुछ किसान हाइड्रोपोनिक तकनीक का उपयोग करके आधे एकड़ से ₹ 25 लाख तक की आय अर्जित करने का दावा करते हैं, लेकिन इसमें उच्च निवेश और विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है।
- ओडिशा में जैविक स्ट्रॉबेरी की खेती करने वाली महिला किसान प्रति एकड़ ₹ 15 लाख तक का लाभ कमा रही हैं।
- एक किसान, जिसने पारंपरिक फसलों की खेती छोड़कर स्ट्रॉबेरी की खेती शुरू की, ने नौ कनाल जमीन से अच्छी आमदनी प्राप्त की, जिसमें सरकार से प्रति कनाल 13,000 रुपये की सब्सिडी भी मिली। (संदर्भः एएनआई न्यूज़)
- बिहार के किसानों ने स्ट्रॉबेरी की खेती और सीधे विपणन के माध्यम से प्रति एकड़ 4.5 से 5 लाख रुपये का शुद्ध लाभ कमाया। (संदर्भः विलेज स्क्वायर)
- **उच्च उपज क्षमताः** आधुनिक कृषि तकनीकों, जैसे कि हाइड्रोपोनिक्स और लो-टनल खेती, से प्रति इकाई क्षेत्र में स्ट्रॉबेरी की उपज काफी बढ़ाई जा सकती है। कुछ किसान आधे एकड़ में 25 लाख रुपये तक की आय अर्जित कर रहे हैं। (संदर्भः कृषि सेवा केंद्र) वहीं, पारंपरिक खेती में भी अच्छी प्रबंधन तकनीकों से प्रति एकड़ 3.5 लाख रुपये से अधिक का लाभ कमाया जा सकता है। (संदर्भः ट्रैक्टरकारवां)
- **छोटे किसानों के लिए अवसरः** स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए बड़े भूभाग की आवश्यकता नहीं होती है, इसलिए छोटे और सीमांत किसान भी इसे आसानी से शुरू कर सकते हैं और अपनी आय बढ़ा सकते हैं। (संदर्भः ट्रैक्टरकारवां)
- **प्रसंस्करण और मूल्यवर्धनः** स्ट्रॉबेरी को जैम, जेली, जूस और अन्य उत्पादों में संसाधित करके किसान अपनी आय को और बढ़ा सकते हैं। (संदर्भः जस्ट एग्रीकल्चर)
- **सरकारी योजनाएंः** केंद्र और राज्य सरकारें स्ट्रॉबेरी की खेती को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएं चला रही हैं, जिसमें सब्सिडी, तकनीकी सहायता और विपणन में सहायता शामिल है, जिससे किसानों के लिए यह और भी आकर्षक विकल्प बन गया है। (संदर्भः एएनआई न्यूज़, संदर्भः मायस्कीम)
- **सफल किसानों के उदाहरणः** कई ऐसे किसानों के उदाहरण हैं जिन्होंने स्ट्रॉबेरी की खेती को अपनाकर अपनी आर्थिक स्थिति में उल्लेखनीय सुधार किया है और दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत बने हैं। (संदर्भः विलेज स्क्वायर, डसंदर्भः एस एम सहगल फाउंडेशन)

निष्कर्ष

स्ट्रॉबेरी विटामिन सी, एंटीऑक्सीडेंट, मैंगनीज और फाइबर से भरपूर एक पौष्टिक फल है, जो हृदय स्वास्थ्य, प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ावा देने, मधुमेह प्रबंधन और त्वचा की देखभाल जैसे कई औषधीय गुण प्रदान करता है। इसमें कम कैलोरी होती है और यह कब्ज से राहत दिलाने और मस्तिष्क की कार्यप्रणाली में सुधार करने मं भी सहायक हो सकती है।

❖❖

Pen to a Book

A Small journey from a pen to a book, keeping the thoughts with their struggle.

STEP TO A STEP FOR PUBLICATION

1. SUBMIT YOUR BOOK ON OUR PORTAL OR SEND US ON E-MAIL
2. GET THE ISBN NUMBER
3. PUBLISH YOUR BOOK IN A E-BOOK PORTAL ALONG WITH FEW HARD COPIES
4. GET THE ROYALTY

Agro India Publications
Add. 5, Vivekananda Marg
Opp. Hotel R INN
Prayagraj – 211003

: 7505907954/9565006333
agroindiapublications@gmail.com

ISSN No. 2583-3316

कृषि में भौगोलिक संकेतः उल्लंघन या संरक्षण

सुनील कुमार जाटव* एवं बी. एस. किरार

जवाहरलाल नेहरू कृषि महाविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, टीकमगढ़

पत्राचारकर्ता: drskjatav@jnkvv.org

परिचय

भौगोलिक संकेत (Geographical Indications - GI) किसी विशेष स्थान से संबंधित उत्पादों की गुणवत्ता, प्रतिष्ठा या कृषि उत्पादों की विशेषता, गुणवत्ता और प्रतिष्ठा को कानूनी मान्यता प्रदान करता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, भौगोलिक संकेत वाले उत्पाद किसानों को आर्थिक लाभ, वैश्विक पहचान और बाजार में प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त दिलाने में मदद करते हैं। यह बौद्धिक संपदा अधिकार (Intellectual Property Rights & IPR) का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसका उद्देश्य किसी विशिष्ट क्षेत्र के उत्पादों को कानूनी सुरक्षा देना है। हालांकि, समय-समय पर इसके उल्लंघन (infringement) के मामले सामने आते हैं, जिससे इन उत्पादों की मौलिकता और बाजार मूल्य पर प्रभाव पड़ता है। अतः भौगोलिक संकेत के उल्लंघन को रोकने और उसके संरक्षण के लिए प्रभावी उपायों की आवश्यकता है।

1 कृषि में भौगोलिक संकेत का महत्व

♦ **स्थानीय उत्पादों की सुरक्षाः** भौगोलिक संकेत प्राप्त कृषि उत्पाद किसी विशेष जलवायु, मिट्टी और पारंपरिक कृषि पद्धतियों से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिएः

- **अल्फांसो आम (महाराष्ट्र) -** इसकी विशिष्ट सुगंध और स्वाद इसे अन्य आमों से अलग बनाती है।
- **बासमती चावल (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश)** - इसकी लंबाई, सुगंध और गुणवत्ता विश्व प्रसिद्ध हैं।
- **चिन्नोर धानः (मध्यप्रदेश) -** बालाघाट का चावल हैं जो की सुगंध के लिए प्रसिद्ध हैं।

♦ **किसानों को आर्थिक लाभः** भौगोलिक संकेत वाले उत्पादों की उच्च मांग होती है, जिससे किसानों को बेहतर दाम मिलते हैं। उदाहरण के लिए, ‘‘दार्जिलिंग चाय‘‘ को भौगोलिक संकेत मिलने के बाद इसके निर्यात और मूल्य में वृद्धि हुई।

♦ **उपभोक्ताओं को गुणवत्ता की गारंटीः** भौगोलिक संकेत से उपभोक्ता सुनिश्चित हो सकते हैं कि वे असली और उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद खरीद रहे हैं।

2. कृषि में भौगोलिक संकेतों का उल्लंघन

भौगोलिक संकेत उल्लंघन से किसानों और कृषि व्यवसाय को गंभीर नुकसान होता है। इसके कुछ प्रमुख रूप हैंः

♦ नकली और निम्न-गुणवत्ता वाले उत्पादों की बिक्री कई व्यापारी कम गुणवत्ता वाले चावल या फल को "बासमती" या "अल्फांसो" के नाम से बेचते हैं, जिससे असली उत्पादकों को नुकसान होता है।

उदाहरणः चीन और पाकिस्तान में भारतीय बासमती चावल की नकल कर अंतरराष्ट्रीय बाजार में बेचा गया।

♦ **अनधिकृत ब्रांडिंग और लेबलिंग**

कुछ कंपनियां बिना अनुमति भौगोलिक संकेत उत्पादों के नाम का उपयोग कर ब्रांडिंग करती हैं।

उदाहरणः यूरोपीय बाजार में दार्जिलिंग चाय के नाम पर अन्य प्रकार की चाय बेची गई।

♦ **अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पेटेंट विवाद**

विदेशी कंपनियां भारतीय कृषि उत्पादों को अपने नाम से पेटेंट कराने का प्रयास करती हैं।

उदाहरणः अमेरिका की एक कंपनी ने ‘‘बासमती‘‘ शब्द को ट्रेडमार्क कराने का प्रयास किया, जिसे भारत सरकार ने कानूनी लड़ाई के बाद रोका।

3. कृषि में भौगोलिक संकेतों का संरक्षण

भौगोलिक संकेत उत्पादों को सुरक्षित रखने के लिए कई कानूनी और व्यावहारिक उपाय आवश्यक हैं।

♦ **कानूनी संरक्षण**

भौगोलिक संकेत (पंजीकरण एवं संरक्षण) अधिनियम, 1999 - भारत में भौगोलिक संकेत के तहत उत्पादों की सुरक्षा करता है।

विश्व व्यापार संगठन (WTO) का ट्रिप्स समझौता (TRIPS Agreement) - भौगोलिक संकेत उत्पादों की वैश्विक सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

- **प्रवर्तन और निगरानी**
  - नकली उत्पादों की पहचान के लिए सरकारी एजेंसियों और किसानों को मिलकर कार्रवाई करनी चाहिए।
  - सरकार और भौगोलिक संकेत उत्पादकों को मिलकर नकली उत्पादों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करनी चाहिए।
  - उपभोक्ताओं को भौगोलिक संकेत उत्पादों की पहचान करने और नकली उत्पादों से बचने के लिए जागरूक किया जाना चाहिए।
  - ऑनलाइन मार्केटप्लेस पर भौगोलिक संकेत उत्पादों की निगरानी और नकली सामान की बिक्री पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।
- **उपभोक्ता जागरूकता**
  - ग्राहकों को भौगोलिक संकेत उत्पादों की पहचान करने और नकली सामान से बचने के लिए शिक्षित किया जाना चाहिए।
  - भौगोलिक संकेत उत्पादों के लिए प्रमाणन और विशेष पैकेजिंग की व्यवस्था होनी चाहिए।
- **अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुरक्षा**
  - भारत को यूरोपीय संघ, अमेरिका और अन्य देशों के साथ GI सुरक्षा समझौते करने चाहिए।
  - WTO और अन्य अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारतीय कृषि उत्पादों की रक्षा के लिए कानूनी पहल करनी चाहिए।

निष्कर्ष

भौगोलिक संकेत न केवल किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाते हैं, बल्कि कृषि उत्पादों की गुणवत्ता और पहचान को भी सुरक्षित रखते हैं। भौगोलिक संकेत उल्लंघन के बढ़ते मामलों को देखते हुए, सरकार, किसान संगठनों और उपभोक्ताओं को मिलकर नकली उत्पादों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करनी चाहिए। GI संरक्षण से भारतीय कृषि उत्पादों को वैश्विक स्तर पर मजबूती मिलेगी और किसानों की आय में वृद्धि होगी। इसलिए, भौगोलिक संकेत उत्पादों के संरक्षण के लिए कठोर कानूनी प्रवर्तन, उपभोक्ता जागरूकता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. भौगोलिक संकेत (पंजीकरण एवं संरक्षण) अधिनियम, 1999
2. WTO- ट्रिप्स समझौता
3. भारतीय पेटेंट कार्यालय (Intellectual Property India)
4. राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा नीति, भारत सरकार

❖❖

ISSN No. 2583-3316

अलसी के पारिस्थितिकीय तन्त्र में एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन

चंचल सिंह[1]*, दीक्षा पटेल[2], श्याम सिंह[3], नरेन्द्र सिंह[4] एवं नन्द किशोर बाजपेई[5]

[1]पौध सुरक्षा, विभाग, [2]कृषि प्रसार, विभाग, [3एवं4]सस्य विज्ञान, विभाग, [5]प्रसार शिक्षा निदेशालय
बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, बाँदा, उत्तर प्रदेश

पत्राचारकर्ता: chanchalsingh9@gmail.com

परिचय

अलसी एक महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है, जो Linaceae कुल के genus - *Linum* का सदस्य है। इस फसल की खेती तेल, बीज एवं रेशा के लिए किया जाता है। इसके बीज में 37–43% तेल, 20% प्रोटीन 28% खाने योग्य रेशा तथा 7.7% नमी पाया जाता है। यह ओमेगा-3 व ओमेगा-6 फैटी एसिड का प्राकृतिक साधन है। विश्व के लगभग 24.37 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से 22.00 लाख टन अलसी का उत्पादन किया जाता है। इस फसल की औसत उत्पादकता 903 किलोग्राम/हे. है। भारतवर्ष के 6.3 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से 2.00 लाख टन अलसी का उत्पादन किया जाता है, जिसकी औसत उत्पादकता 317.5 किलोग्राम/हे. है। यदि हम बात करे उत्तर प्रदेश की तो यहाँ के 1.0 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 4.0 लाख टन अलसी का उत्पादन किया जाता है, इसकी औसत उत्पादकता 462 किलोग्राम/हे. है।

अलसी के पौध पर सेमिलूपर

फसल के विभिन्न अवस्थाओं पर अनेकों कीट-व्याधियों का प्रकोप देखा जा सकता है। जो फसल की कम उत्पदकता के प्रमुख कारकों में से एक है। फसल को क्षति पहुँचाने वाले प्रमुख कीट क्रमशः कलिका मक्खी (*Dasyneura lini* Barens), लीफ़ माइनर (*Phytomyza horticola* Gour) सेमिलूपर (*Plusia orichalsia* Fab.), थ्रिप्स (*Caliothrips indicus* Bugnall), अलसी कैटर्पिलर (*Laphygma exigua* Hubn.), माहू (*Myzus persicae* Sulz.) इत्यादि है। उक्त कीटों में कलिका मक्खी अकेले ही लगभग 17-49% तक उत्पादन में क्षति पहुचाने की क्षमता रखती है। कलिका मक्खी की गर्भित मादा अविकसित पुष्प कलिका पर समूह में अण्डे रखती है। जिससे मैगेट (वगैर पैर की शूण्डी) निकलकर पुष्प की विकसित हो रही पंखुड़ियों तथा दानों को खातीं हैं। परिणामस्वरूप कलिकाओं का आकार बदल जाता है। जबतक फसल की कलिका हरी बनी रहती है, तबतक यह कीट प्रक्षेत्र में क्रियाशील रहता है। पूर्ण विकसित मैगेट जमीन पर गिरकर प्यूपा में परिवर्तित हो जाता हैं। इसके बाद प्यूपा से वयस्क निकलकर अपनी दूसरी संतति के लिए सक्रिय हो जाती है।

प्रमुख व्याधियों में रतुआ (*Melampsora lini*), उकठा (*Fusarium oxysporum lini*), पास्मों व्याधि (*Septoria linicola*), जड़ सड़न (*Fusarium oxysporum lini*), ब्लाइट (*Alternaria lini Dey*), चूर्णिल आसिता (*Podosphaera lini*) इत्यादि का नाम आता है। यदि हम बात करें खरपतवारों की तो जंगली जई (*Avena ludoviciana*), बथुआ (*Chenopodium album*), अमरबेल (*Cuscuta reflexa*), बनमटरी (*Lathyrus aphaca*), हिरनखुरी

रतुआ व्याधि से ग्रसित पौध

(*Convolvulus arvensis*) एवं तिपतिया (*Medicago denticulata*) ऐसे प्रमुख खरपतवार हैं, जो इस फसल के साथ स्थान व पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते है। परिणामस्वरूप फसल की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

फसल अवस्था के अनुरूप समेकित नाशीजीव प्रबन्धन

बुवाई से पहले

♦ फसल की आवश्यकतानुसार भूमि का चुनाव करें, साथ ही यह भी प्रयास करें कि अधिक उत्पादन क्षमता की उन्नतशील प्रजाति का बीज किसी विश्वसनीय संस्थान से ही प्राप्त हो।

♦ मौसम की अनुकूलता के आधार पर फसल की बुवाई,ससमय अक्तूबर माह तक सम्पन्न कर लें।

♦ प्रक्षेत्र से खरपतवारों एवं अनावश्यक पौधों को उखाड़ कर, प्रक्षेत्र की स्वच्छता को बनाए रखें।

♦ खाद एवं उर्वरकों का उपयोग मिट्टी जाँच की संस्तुति के आधार पर ही करना सुनिश्चित करें।

♦ प्रक्षेत्र के मेड़ों पर हानिकारक कीट–व्याधियों के प्राकृतिक शत्रुओं को आकर्षित करने के उद्देश्य से आकर्षक पौधों यथा सरसों, तुलसी, सूर्यमुखी इत्यादि को रोपित करें।

♦ उपरोक्त प्राकृतिक शत्रुओं को आकर्षित करने वाले फूलदार पौधों (गेंदा, लोबिया, सूर्यमुखी इत्यादि) को अन्तःवर्गीय फसल के रूप में भी उगाया जा सकता है।

♦ कम से कम तीन वर्ष का फसल चक्र अपनाएँ, जिसमें विभिन्न समूह के फसलों जैसे – खाद्यान्य, दलहनी, तिलहनी इत्यादि फसलों का समावेश हो।

बुवाई के समय

♦ फसल को विभिन्न मृदा जनित व्याधियों से बचाव के लिए ट्राइकोडर्मा या स्यूडोमोनास से भी बीज अथवा मृदा को उपचारित अवश्य करना चाहिए।

♦ मिट्टी जाँच की संस्तुति नहीं होने की स्थिति में 20-60 किलोग्राम नत्रजन (N),10-30 किलोग्राम स्फुर (P_2O_5) एवं 30-60 किलोग्राम पोटास (K_2O) के साथ ही साथ लगभग 200-250 कुंतल सड़ी हुई गोबर की खाद का उपयोग अवश्य किया जाना चाहिए।

♦ यदि प्रक्षेत्र की मृदा में सल्फर, बोरान अथवा जिंक की कमी

माहू/सफेद मक्खी का परभक्षी कीट

हो तो क्रमशः 30 किलोग्राम/हे. सल्फर, 1.0 - 1.5 किलोग्राम /हे. बोरॉन या 20 - 25 किलोग्राम /हे. जिंक सल्फेट का उपयोग भी किया जाना चाहिए।

♦ हमेशा प्रमाणित बीज का उपयोग करना चाहिए, साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि फसल के बीज के साथ कोई खरपतवार का बीज मिश्रित नहीं हो।

♦ फसल की निराई-गुड़ाई आसान हो सके, इसको दृष्टिगत रखते हुए बीज की बुवाई पंक्तियों में की जानी चाहिए।

♦ फसल की प्रारम्भिक अवस्था में ही पौध सघनता निर्धारित कर लेना चाहिए, जिससे फसल एवं खरपतवारों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्धा को कम किया जा सके।

♦ खरपतवारों के जमाव को कम करने लिए खरपतवारनाशी जैसे- पेंडीमेथालिन (Pendimethalin) 0.75-1.0 किलोग्राम अथवा Oxadiazon @ 0.5 किलोग्राम/हे./500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तीन दिनों के अन्दर छिड़काव किया जा सकता है।

♦ बुवाई के 15-20 दिनों पश्चात Quizalofop @ 40-50 ग्राम/हे./500 लीटर पानी में घोलकर पुनः छिड़काव करके उगे हुए खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता हैं।

वानस्पतिक वृद्धि की अवस्था

♦ व्याधि ग्रसित पौधों या पौध प्रभागों एवं कीटों के दृष्यमान अवस्थाओं को एकत्र करके नष्ट करते रहें।

कीटों का परभक्षी मकड़ी

♦ फसल की क्रान्तिक अवस्थाओं पर अवश्यकतानुसार सिचाई व अन्य कर्षण क्रियाएँ करते रहें।

♦ प्रक्षेत्र में जल भराव की स्थिति उत्पन्न नहीं होने दें।

♦ यदि प्रक्षेत्र में हानिकारक नाशीजीवों के प्राकृतिक शत्रुओं की उपस्थिति हो तो जीवनाशी रसायनों का उपयोग करने से बचें, साथ ही साथ प्राकृतिक शत्रुओं की क्रियाशीलता को बढ़ाने हेतु यथोचित कर्षण क्रियाएँ अपनाएँ।

♦ माहू, लीफ माइनर व अन्य सूक्ष्म कीट को आकर्षित करने के लिए पीला चिपचिपा पाश (Yellow Sticky Trap) 10–12 प्रति एकड़ की दर से स्थापित करना चाहिए।

♦ कीटों के समुचित निगरानी के लिए प्रकाश पाश (Light Trap) 1-2 प्रति हेक्टेयर या फेरोमोन पाश (Pheromone Trap) 2-3 प्रति एकड़ की दर से स्थापित करना चाहिए।

शूण्डी/जोरई/लार्वा का परपोषी कीट

♦ प्रकाश पाश को शाम 6–10 बजे तक चलाना चाहिए। जबकि फेरोमोन पाश का ल्योर 20–25 दिनों के अन्तराल पर बदलते रहना चाहिए।

♦ कीट जैसे सेमिलूपर इत्यादि के प्राकृतिक प्रबन्धन को बढ़ावा देने के उद्धेश्य से लगभग 50 चिड़ियों के बैठने का स्थान (Bird Perches) प्रति हेक्टेयर स्थापित किए जाने चाहिए।

♦ जब फसल में फली/दाने बनने लगें तब इन्हे प्रक्षेत्र से निकाल देना चाहिए, अन्यथा ये पंक्षी फसल को क्षति पहुंचा सकते हैं।

♦ शाम के समय (7–8 बजे के बीच) अलाव जलाने से भी कीट अलाव की तरफ आकर्षित होकर जलकर मर जाते हैं।

♦ पारिस्थितिकीय अभियन्त्रण (Ecological Engineering) के द्वारा प्रक्षेत्र में प्राकृतिक शत्रुओं को संरक्षित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

♦ यदि सम्भव हो तो प्राकृतिक शत्रुओं को प्रयोगशालाओं में संवर्धित करके भी खेतों में छोड़ा जा सकता है।

♦ किसी भी पोषक तत्व के कमी का लक्षण प्रदर्शित होने पर संबन्धित तत्व का उपयोग करके, उसे दूर किया जाना चाहिए, अन्यथा उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता हैं।

♦ आवश्यकतानुसार एक या दो बार निराई–गुड़ाई की जानी चाहिए, पहली निराई-गुड़ाई बुवाई के 20–25 दिनों बाद तथा दूसरी बुवाई के 40–45 दिनों बाद करने से फसल एवं खरपतवारों के बीच की प्रतिस्पर्धा को बहुत हद तक कम किया जा सकता है।

♦ यदि कोई कीट या व्याधि कारक के आर्थिक क्षति स्तर (ETL) तक पहुँचने की सम्भावना हो तो आस - पास के कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विभाग अथवा अन्य किसी विश्वसनीय संस्था के विशेषज्ञ की संस्तुति के आधार पर सुरक्षित रसायनों का सावधानीपूर्वक छिड़काव किया जा सकता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त वर्णित कृषि परिस्थितिकीय विश्लेषण पर आधारित अलसी में फसल प्रबन्धन की कार्यविधि अपनाई जाय तो किसान भाई समय रहते कम खर्च करते हुए, अधिक से अधिक आय अर्जित कर सकते है। साथ ही साथ खेती में होने वाले अनावश्यक व्यय को भी न्यूनतम रखा जा सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

जैव कीटनाशक का महत्व एवं कृषि में योगदान

नीरज नाथ परिहार* एवं ज्वाला परते

कृषि विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान प्रौद्योगिकी व अनुसंधान स्कूल, सरदार पटेल विश्व विद्यालय, बालाघाट, मध्य प्रदेश

पत्राचारकर्ता: nparihar427@gmail.com

परिचय

कीटनाशक कहे जाने वाले रसायन ऐसे यौगिक होते हैं जिनका उपयोग कीटों को नष्ट करने के लिए किया जाता है। कीटनाशक आमतौर पर एक रासायनिक या जैविक कारक होता है, जैसे कि वायरस, जीवाणु, एंटीबायोटिक या कीटाणुनाशक जो कीटों को रोकता है, उन्हें अप्रभावी बनाता है या मार देता है।' इसके विपरीत जैव कीटनाशक (Biopesticides) प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले पदार्थों या जीवों से प्राप्त होते हैं, जिनका उपयोग कीटों को नियंत्रित करने या मारने के लिए किया जाता है. ये कीटनाशक, रासायनिक कीटनाशकों के विपरीत, पर्यावरण के लिए कम हानिकारक होते हैं और कीटों के प्रति प्रतिरोध विकसित होने की संभावना भी कम होती है। कृषि में पौधों के कीटों के नियंत्रण के लिए रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग बहुत लंबे समय से किया जाता रहा है। हालाँकि, ऐसे रासायनिक उत्पादों के उपयोग से मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को लेकर कई चिंताएँ जुड़ी हैं। ऐसे रासायनिक उत्पादों की तुलना में जैव कीटनाशकों को कीट नियंत्रण का अधिक सुरक्षित विकल्प माना जाता है। जैव कीटनाशक कुछ प्रकार के कीटनाशक होते हैं जो जानवरों, पौधों, बैक्टीरिया और कुछ खनिजों जैसी प्राकृतिक सामग्रियों से प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, कैनोला तेल और बेकिंग सोडा का कीटनाशक के रूप में उपयोग होता है और इन्हें जैव कीटनाशक माना जाता है।

'जैव कीटनाशक व्यक्तियों और पर्यावरण के लिए न्यूनतम खतरा पैदा करते हैं, जिससे वे रासायनिक या रासायनिक-व्युत्पन्न कीटनाशकों की तुलना में अपेक्षाकृत सुरक्षित विकल्प बन जाते हैं। पर्यावरणीय सुरक्षा और मेज़बान विशिष्टता, कृषि कीटों के प्रबंधन में जैव कीटनाशकों के मुख्य लाभ हैं।'

जैव कीटनाशक क्या हैं?: जैव कीटनाशक, जिन्हें जैविक कीटनाशक भी कहा जाता है, प्राकृतिक जीवों या पदार्थों से बने रसायन होते हैं जिनका उपयोग विशिष्ट जैविक प्रभावों द्वारा कृषि कीटों, खरपतवारों और रोग पैदा करने वाले कारकों को नियंत्रित या दबाने के लिए किया जाता है। जैव कीटनाशक किसे माना जाना चाहिए, इसकी कई परिभाषाएँ हैं।

'जैव कीटनाशक' शब्द उन यौगिकों को संदर्भित करता है जिनका उपयोग, सामान्य रासायनिक कीटनाशकों के विपरीत, विशिष्ट जैविक प्रभावों के माध्यम से कृषि कीटों को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। कीटों के प्रबंधन के लिए प्रयुक्त, जैव कीटनाशक उन उत्पादों को संदर्भित करते हैं जिनमें जैव-नियंत्रण कारक, प्राकृतिक तत्व या प्राकृतिक पदार्थों (जैसे जानवर, पौधे, जीवाणु, या विशिष्ट खनिज) से उत्पन्न रसायन होते हैं। इन कारकों में उनके जीन या मेटाबोलाइट्स भी शामिल हो सकते हैं।

जैव कीटनाशकों के प्रकार

निष्कर्षण के स्रोत/उत्पत्ति के आधार पर, जैव कीटनाशकों को निम्नलिखित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः

अ) माइक्रोबियल कीटनाशकः माइक्रोबियल कीटनाशक सूक्ष्मजीवों से प्राप्त जैव कीटनाशक हैं, जिनमें बैक्टीरिया, वायरस, कवक, प्रोटोजोआ और एंटोमोपैथोजेनिक नेमाटोड शामिल हैं, जो विशिष्ट पौधों के कीटों के खिलाफ कार्य करते हैं। वे रोग उत्पन्न करके, भोजन और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करके, विषैले मेटाबोलाइट्स उत्पन्न करके या अन्य विभिन्न क्रिया-प्रणालियों द्वारा कीटों को नियंत्रित करते हैं।

कुछ महत्वपूर्ण सूक्ष्मजीवी कीटनाशकों का संक्षेप में वर्णन नीचे दिया गया हैः

- **जीवाणु जैव कीटनाशकः** सूक्ष्मजीवी कीटनाशकों का सबसे आम प्रकार जीवाणु जैव कीटनाशक हैं, जिनका उपयोग ज्यादातर कीटों को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है, लेकिन कुछ का उपयोग अन्य रोगजनक बैक्टीरिया और कवक के खिलाफ भी किया जाता है। कीटनाशक

गतिविधि वाले बैक्टीरिया की अनेक प्रजातियों में से, एंटोमोपैथोजेनिक बैक्टीरिया बैसिलस थुरिंजिएंसिस (बीटी) बर्लिनर सबसे व्यापक रूप से अध्ययन किया गया और व्यावसायिक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला जैव कीटनाशक है। अन्य सामान्यतः प्रयुक्त जीवाणु जैवकीटनाशकों में बैसिलस सबटिलिस, स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस, एग्रोबैक्टीरियम रेडियोबेक्टर आदि शामिल हैं।

- **वायरल जैव कीटनाशकों:** कीटों को संक्रमित करने वाले कई विषाणु परिवार ज्ञात हैं; तथापि, बैकुलोविरिडे परिवार से संबंधित विषाणु ही एकमात्र ऐसे विषाणु हैं, जिनका व्यवहार में कीटनाशक के रूप में उपयोग किया जाता है। बैकुलोवायरस दोहरे-रज्जुक वाले डीएनए विषाणुओं का एक समूह है, जो कीटों को संक्रमित करता है। ये कीटों को निगलने के माध्यम से संक्रमित करते हैं। निगलने के बाद, ये कीट के शरीर में प्रवेश करते हैं और बैकुलोवायरस कण छोड़ते हैं, जिससे आँत की कोशिकाओं में संक्रमण हो जाता है। निगलने के कुछ दिनों के भीतर, कीट भोजन करना बंद कर देते हैं और अंततः मर जाते हैं, जिससे विषाणु कण पर्यावरण में फैल जाते हैं।
- **फंगल जैव कीटनाशकों:** कीटों को नियंत्रित करने के लिए आमतौर पर फफूंद जैव-कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। कुछ कवक अन्य कवकों, जीवाणुओं और अन्य पादप रोगजनकों के विरुद्ध भी काम करते हैं। जीवाणु और विषाणु जैव-कीटनाशकों के विपरीत, फफूंद जैव-कीटनाशकों को संक्रमण फैलाने के लिए निगलने की आवश्यकता नहीं होती। ये कीटों के क्यूटिकल में प्रवेश कर सकते हैं और जगह और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा पैदा करके या विषाक्त द्वितीयक उपापचयज (सेकेंडरी मेटाबोलाइट्स) उत्पन्न करके कीटों को संक्रमित कर सकते हैं। आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले कुछ फंगल जैव कीटनाशकों में ब्यूवेरिया बेसियाना, मेटारिज़ियम एनीसोप्लिए, ट्राइकोडर्मा विरिडे, पेसिलोमाइसेस फैरिनोसस और वर्टिसिलियम लेकानी शामिल हैं।

ब **) जैव रासायनिक कीटनाशक:** जैव रासायनिक कीटनाशक प्राकृतिक पदार्थों से प्राप्त जैव कीटनाशक होते हैं जो गैर-विषैले तरीकों से कीटों को नियंत्रित करते हैं। इन्हें आगे पादप अर्क, अर्ध-रासायनिक और वृद्धि नियामकों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

- **पौधों के अर्क (वानस्पतिक):** वानस्पतिक जैव-कीटनाशक भी जैव-कीटनाशकों का एक महत्वपूर्ण समूह है, जो पौधों पर आधारित अर्क और आवश्यक तेलों से प्राप्त होते हैं। इनमें कई प्रकार के द्वितीयक मेटाबोलाइट्स शामिल हैं जैसे स्टेरॉयड, एल्कलॉइड, फेनोलिक्स, टेरपेनोइड्स और नाइट्रोजनयुक्त यौगिक जो कीटनाशक गतिविधि प्रदर्शित करते हैं। ये यौगिक विकर्षक, वृद्धि नियामक और प्रतिपिंडनाशक के रूप में काम कर सकते हैं। ये श्वसन को बाधित करके और चयापचय संबंधी विकार पैदा करके भी काम कर सकते हैं। कुछ सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाले पादप-आधारित जैव-कीटनाशकों में नीम (एजाडिरेक्टा इंडिका से), निकोटीन (निकोटियाना प्रजाति से), पाइरेथ्रम (डाल्मेटिया पाइरेथ्रम से), रयानोडाइन (रयानियां; रयानियां स्पेशिओसा से), आदि शामिल हैं।
- **अर्ध-रसायन:** ये पौधों या जानवरों द्वारा उत्सर्जित रसायन होते हैं, जो समान या विभिन्न प्रजातियों के रिसेप्टर जीवों में व्यवहारिक या शारीरिक परिवर्तन का कारण बनते हैं। वे पौधों के कीटों को व्यापक स्तर पर नियंत्रित कर सकते हैं, जैसे कि बड़े पैमाने पर जाल बिछाना, फुसलाना और मारना, प्रजनन में बाधा डालना, धक्का-खींचना प्रणाली और पौधों की सुरक्षा को सक्रिय करना।

सेमीओकेमिकल्स को दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है: फेरोमोन और एलीलोकेमिकल्स फेरोमोन, जिन्हें अंतरविशिष्ट अर्ध-रसायन भी कहा जाता है, वे रसायन हैं जो एक ही प्रजाति के जीवों के व्यवहार को बदल देते हैं। ऐलीलोकेमिकल्स विभिन्न प्रजातियों के व्यक्तियों के व्यवहार को परिवर्तित करते हैं और इन्हें अंतरविशिष्ट अर्ध-रासायनिक भी कहा जाता है।

- **वृद्धि नियामक:** कीट वृद्धि नियामक (IGR) कीटनाशक होते हैं जो कीटों की वृद्धि और विकास में बाधा डालते हैं। ये मच्छरों, पिस्सू और तिलचट्टों जैसे विभिन्न कीटों के विरुद्ध कार्य करते हैं। इनमें किशोर हार्मोन एनालॉग्स (जेएचए), इक्डाइस्टेरॉइड्स एनालॉग्स और चिटिन संश्लेषण अवरोधक (सीएसआई) शामिल हैं। जेएचए कीटों में किशोर हार्मोन की नकल करते हैं जो वयस्क अवस्था में परिपक्वता को बढ़ावा देने वाले जीन को बाधित करते हैं। सीएसआई काइटिन के निर्माण को रोकते हैं जो कीटों के सबसे बाहरी भाग का एक प्रमुख घटक है। इक्डाइस्टेरॉइड कीटों में मोल्टिंग और कायापलट प्रक्रिया में शामिल होते

हैं। एक जैव कीटनाशक के रूप में, ये कीटों की मोल्टिंग और वृद्धि की क्षमता में बाधा डाल सकते हैं।

स) प्लांट इनकॉर्पोरेटेड प्रोटेक्टेंट्स (पीआईपीएस): पीआईपी (पीआईपी) जैव रासायनिक कीटनाशकों का एक वर्ग है जो आनुवंशिक रूप से संशोधित पौधों से प्राप्त होता है। ये कीटनाशक गतिविधि प्रदर्शित करने वाली आनुवंशिक सामग्री वाले ट्रांसजेनिक पौधों द्वारा उत्पादित होते हैं। इस विधि का सबसे व्यापक रूप से उपयोग किया जाने वाला उदाहरण बीटी फसलें हैं, जहां मिट्टी के जीवाणु बैसिलस थुरिंजिएंसिस से क्राई प्रोटीन को पौधों में प्रवेश कराया जाता है।

कुछ देश आनुवंशिक रूप से संशोधित उत्पादों के प्रति उपभोक्ता प्रतिरोध के कारण पीआईपी को जैव कीटनाशक नहीं मानते हैं।

हाल ही में, कीटनाशकों की एक नई पीढ़ी के उत्पादन के लिए आरएनए हस्तक्षेप (आरएनएआई) तंत्र का भी उपयोग किया गया है। इसमें, कीटों द्वारा दोहरे-रज्जुक वाले आरएनए को निगल लिया जाता है, जो कीटों के एमआरएनए को नष्ट कर देता है और इस प्रकार उनकी वृद्धि को धीमा कर देता है या उन्हें मार देता है।

जैव कीटनाशकों का महत्व

एक स्थायी कृषि प्रणाली स्थापित करने का प्रयास कर रहे अधिकांश किसान जानते हैं कि अवांछित कीटों के विरुद्ध रासायनिक खाद उनकी पहली रक्षा पंक्ति नहीं है। जब कीटों का प्रकोप बहुत गंभीर हो जाता है और रासायनिक उपचार की आवश्यकता होती है, तो किसान के पास दो विकल्प होते हैं -एक 'नरम' जैव-कीटनाशक या एक पारंपरिक, सिंथेटिक उपचार। एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) कार्यक्रम, कीटों की आबादी को नियंत्रण में रखने के लिए सांस्कृतिक उपायों, जैविक नियंत्रणों (जैसे शिकारी कीटों) और रासायनिक नियंत्रण को एक साथ जोड़ता है।

जैव कीटनाशकों के लाभ

- जैव कीटनाशक पर्यावरण के अनुकूल होते हैं तथा मनुष्यों एवं अन्य जीवों के लिए कम विषैले होते हैं।
- वे लक्ष्य-विशिष्ट होते हैं, इसलिए उनसे लाभकारी जीवों को नुकसान पहुंचने की संभावना कम होती है।
- कीट प्रतिरोधिता विकसित होने का जोखिम कम होता है।
- जैव कीटनाशकों की जैवनिम्नीकरणीय प्रकृति पर्यावरण के लिए जोखिम को कम करती है।

वे एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) कार्यक्रमों के अनुकूल हैं, जैव कीटनाशक पर्यावरण के लिए अधिक अनुकूल होते हैं तथा मिट्टी, जल आपूर्ति या वन्य जीवन (लाभकारी कीटों सहित) को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं, जो कि उन्हें टिकाऊ कृषि प्रणाली में शामिल करने का एक मुख्य लाभ है।

जैव-कीटनाशक और जैव-कीटनाशक के कई अन्य प्रकार हैं: गोमूत्र, किण्वित दही का पानी, नीम-गाय मूत्र अर्क, मिश्रित पत्तियों का अर्क, मिर्च-लहसुन का अर्क।

निष्कर्ष

जैव कीटनाशक (biopesticides) आधुनिक कृषि के लिए महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे पारंपरिक रसायनों की तुलना में पर्यावरण के अनुकूल और कम विषैले होते हैं। वे लक्षित कीटों को नियंत्रित करते हैं और लाभकारी जीवों को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं, जिससे मिट्टी और जल प्रदूषण कम होता है और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा मिलता है। हालांकि, उनका सही और नियंत्रित उपयोग आवश्यक है ताकि गैर-लक्षित जीवों पर अनपेक्षित प्रभाव से बचा जा सके।

संदर्भ

1. ईपीए. जैवकीटनाशक. ऑनलाइन उपलब्धः www.epa.gov/pesticides/biopesticides (9 सितंबर 2017 को उपयोग किया गया).
2. कुमार, जे., रामलाल, ए., मलिक, डी., और मिश्रा, वी. (2021)। कुछ जैव कीटनाशकों का अवलोकन और व्यावसायिक स्वीकृति के लिए पौध संरक्षण में उनका महत्व। प्लांट्स, 10(6)। https://doi:/10.3390/plan10061185.
3. लियू, एक्स., काओ, ए., यान, डी., ओयांग, सी., वांग, क्यू., और ली, वाई. (2019)। जैव कीटनाशकों के तंत्र और उपयोगों का अवलोकन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ पेस्ट मैनेजमेंट, 67(1), 65–72। doi:10.1080/09670874.2019.1664789.
4. मेहरोत्रा, एस., कुमार, एस., ज़ाहिद, एम., और गर्ग, एम. (2016)। जैव कीटनाशक। एक सतत भविष्य के लिए पर्यावरणीय जैव प्रौद्योगिकी के सिद्धांत और अनुप्रयोग, 273–292। doi:10.1007/978-981-10-1866-4_8.
5. पार्कर, के.एम., बैरागन बोरेरो, वी., वैन लीउवेन, डी.एम., लीवर, एम.ए., माटेस्कु, बी., और सैंडर, एम.

(2019)। आरएनए हस्तक्षेप कीटनाशकों का पर्यावरणीय भाग्यः कृषि मृदाओं में द्वि-रज्जुक आरएनए अणुओं का अवशोषण और क्षरण। पर्यावरण विज्ञान और प्रौद्योगिकी। doi:10.1021/acs.est.805576.

6. राजमणि, एम., नेगी, ए. (2021)। कीट प्रबंधन के लिए जैव कीटनाशक। वेंकटरमनन, वी., शाह, एस., प्रसाद, आर. (संपादक) सतत जैव अर्थव्यवस्था। स्प्रिंगर, सिंगापुर। https://doi.org/10.1007/978-981-15-7321-7¬11.

7. सेंथिल-नाथन, एस. (2014)। जैव कीटनाशकों और कीटों के विरुद्ध उनकी क्रियाविधि की समीक्षा। पर्यावरणीय स्थिरता, 49–63। doi:10.1007/978-81-322-2056-5_3.

8. स्मार्ट, एल.ई., अराडोटिर, जी.आई., और ब्रूस, टी.जे.ए. (2014)। एकीकृत कीट प्रबंधन में अर्ध-रसायनों की भूमिका। एकीकृत कीट प्रबंधन, 93–109। doi:10.1016/978-0-12-398529-3.00007-5.

9. सुब्रमण्यन, एस., और शंकरगणेश, के. (2016)। कीट हार्मोन (कीटनाशक के रूप में)। खाद्य सुरक्षा के लिए पर्यावरण-अनुकूल कीट प्रबंधन, 613–650। doi:10.1016/978-0-12-803265-7.00020-8.

❖❖

ISSN No. 2583-3316

सब्जी उत्पादन में गुणवत्तायुक्त पौधशाला का महत्व एवं प्रबंधन

विनय कुमार

कृषि विज्ञान विभाग, गोविंद बल्लभ पंत कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उ. स. नगर, उत्तराखंड

पत्राचारकर्ता: gangwarv586@gmail.com

परिचय

सब्जी पौधशाला एक ऐसा स्थान या प्रतिष्ठान है जहाँ युवा सब्जी के पौधों को तब तक उगाया या संभाला जाता है जब तक वे स्थायी रूप से रोपाई के लिए तैयार नहीं हो जाते। दूसरे शब्दों में, नर्सरी को एक ऐसा स्थान माना जा सकता है जहाँ पौधों की प्रारंभिक वृद्धि के दौरान उनकी देखभाल की जाती है,साथ ही अंकुरण और उसके बाद की वृद्धि के लिए सर्वोत्तम परिस्थितियाँ प्रदान की जाती हैं, जब तक कि वे खुले खेत की परिस्थितियों में रोपाई के लिए पर्याप्त मजबूत न हो जाएँ। नर्सरी बेड एक विशेष रूप से तैयार की गई जमीन होती है, जहाँ बीज बोए जाते हैं। पौध वह युवा स्पोरोफाइट है, जो बीज के भ्रूण से उत्पन्न होता है।

सब्जी पौधशाला उगाने की आवश्यकता क्यों है ?

भारत में सब्जी की खेती के बड़े हिस्से में अब संकर (हाइब्रिड) बीजों की बुवाई की जा रही है, जो महंगे होते हैं लेकिन अधिक उपज और गुणवत्ता वाला उत्पादन देते हैं। बीजों की उच्च लागत को ध्यान में रखते हुए, कुछ सब्जी फसलों जैसे टमाटर, बैंगन, शिमला मिर्च और कुकुर्बिट्स की रोपाई नर्सरी में उगाने के बाद की जा रही है, ताकि अधिकतम अंकुरण और स्वस्थ पौधे स्थापित किए जा सकें।

पौधशाला के प्रकार

क) अस्थायी पौधशाला

इस तरह की नर्सरी सिर्फ मौसमी जरूरतों या किसी खास परियोजना के लिए तैयार की जाती है। ऐसी पौधशाला आकार में छोटी होती है और इसे अल्प अवधि के लिए स्थापित किया जाता है, जिसके बाद इसे छोड़ दिया जाता है। इसे ज्यादातर सब्जियों के पौधे उगाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह पौधशाला रोपण वाली जगह के पास पाई जाती है।

ख) स्थायी पौधशाला

इस प्रकार की पौधशाला में पौधों को तब तक पोषित किया जाता है जब तक कि वे बिक्री के लिए तैयार न हों या खेतों में रोपित न कर दिए जायें। इसका आकार अस्थायी पौधशाला से बड़ा होता है और इसमें स्थायी पौधशाला की सभी आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। स्थायी पौधशाला में वर्ष भर की जाने वाली कुछ प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

- इसमें एक बड़े क्षेत्र की आवश्यकता होती है जो सड़क से आसानी से जुड़ा हो ताकि आने-जाने में परेशानी न हो।
- गहन प्रबंधन और पौधों की नियमित निगरानी अनिवार्य होती है।
- प्रारंभिक निवेश अधिक होता है।
- इसमें कार्यालय, भंडारण सुविधा, नर्सरी बेड, सिंचाई प्रणाली, बिजली, परिवहन सुविधाएं, पैकिंग यार्ड और खाद की सुविधाएं मौजूद होती हैं।

सब्जी पौधशाला के प्रबंधन को प्रभावित करने वाले कारक

कई कारक सब्जी पौधशाला के प्रबंधन को प्रभावित करते हैं, जैसे पौधशाला का स्थान चुनना, मिट्टी की तैयारी करना, बीज और मिट्टी का उपचार करना, नर्सरी बेड तैयार करना, बीज बोना, बीजों को ढकना, पानी देना, और कीटों और बीमारियों से पौधों की सुरक्षा और पौधों को सख्त बनाना (हार्डनिंग)। इनमें से किसी भी कारक की उपेक्षा बीज अंकुरण, पौधों की वृद्धि और विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती है।

सब्जी पौधशाला के लिए स्थान का चयन

एक अच्छी जगह की कुछ मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित होनी चाहिए।

- पूरे दिन पर्याप्त धूप मिलनी चाहिए।
- पशुओं और तेज हवाओं से सुरक्षित होनी चाहिए।
- पानी भरने से प्रदूषण से बचा जा सके।
- मिट्टी की स्थिति अच्छी होनी चाहिए और पानी को आसानी से सोखने की उसमें क्षमता हो।
- उचित जल निकासी की व्यवस्था होनी चाहिए।

सब्जी पौधशाला के लिए मिट्टी की तैयारी

पौधशाला में सब्जियों के पौधे उगाने के लिए दोमट से चिकनी दोमट मिट्टी आदर्श होती है, जो ढीली, भुरभुरी और जैविक तत्वों से समृद्ध होनी चाहिए। मिट्टी की जल निकासी की क्षमता उत्तम होनी चाहिए ताकि पौधों के विकास में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो सके। मिट्टी का पी.एच. मान लगभग 7.0 होना चाहिए। मिट्टी की तैयारी के लिए गहराई से जुताई करनी चाहिए चाहे ट्रैक्टर से हो या हाथ से। इसके बाद, 2-3 बार और जुताई करनी चाहिए। प्रति वर्ग मीटर नर्सरी में 4-5 किलोग्राम उत्तम सड़ी हुई गोबर की खाद या 500 ग्राम वर्मी-कंपोस्ट मिलानी चाहिए।

पौधशाला में बीज बोने से पहले मिट्टी की उपचार

मिट्टी में हानिकारक कीट, उनके अंडे, लार्वा और प्यूपा, रोगजनक कवक के बीजाणु, जीवाणु, सूत्रकृमि और खरपतवार के बीज, जो पौधों की वृद्धि और विकास को प्रभावित करते हैं। इन समस्याओं को रासायनिक और सौर उपचारों द्वारा हल किया जा सकता है। मिट्टी को 30 मिनट के लिए लगभग 600 से. तापमान पर गर्म करके कीटाणु रहित किया जा सकता है। इसके लिए धुँआ उत्पन्न करने वाली मशीनों का उपयोग किया जा सकता है या सौरकरण उपचार का प्रयोग किया जा सकता है।

क) फॉर्मेलिन से मृदा उपचार

2.5 मिलीलीटर कमर्शियल ग्रेड फॉर्मल्डिहाइड को एक लीटर पानी में मिलाया जाता है। इस घोल को 4-5 लीटर प्रति वर्ग मीटर की दर से मिट्टी में डाला जाता है ताकि शीर्ष मिट्टी की सतह 15-20 सेंटीमीटर की गहराई तक पूरी तरह से तर हो जाये।

ख) कवकनाशी से मिट्टी का उपचार

कवकनाशी जैसे कैप्टान या थिरम 5 ग्राम प्रति वर्ग मीटर का उपयोग मिट्टी में बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

ग) कीटाणुनाशक से मिट्टी का उपचार

कीटाणुनाशक जैसे क्लोरपायरीफॉस 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का उपयोग 15-20 सेमी गहराई तक मिट्टी में किया जाता है।

पौधशाला में बेड की तैयारी

बारिश के मौसम में उन्नत बेड बनाए जाते हैं, जबकि गर्मी और सर्दी में फ्लैट बेड भी बनाए जा सकते हैं। बेड की ऊँचाई जमीन से 15-20 सेंटीमीटर रखनी चाहिए। बेड की चौड़ाई 1 मीटर और लंबाई 3 मीटर होनी चाहिए। बेडों के बीच 30-45 सेंटीमीटर का अंतर रखें ताकि पानी की निकासी हो सके। प्रत्येक बेड में 20-25 किलो अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद

मिलाएं। बीज बोने के लिए क्यारियाँ पूर्व से पश्चिम दिशा में समानांतर चौड़ाई में बनाई जानी चाहिए, ताकि पंक्तियों के बीच सूर्योदय से सूर्यास्त तक पूरे दिन सूर्य की रोशनी उपलब्ध हो और अंकुरों में डैम्पिंग ऑफ की समस्या से बचा जा सके।

एक हेक्टेयर में पौधरोपण के लिए आवश्यक बीज और क्षेत्र

टमाटर 300-400 ग्राम, मिर्च 800-1000 ग्राम, शिमला मिर्च 300-400 ग्राम, फूलगोभी, पत्ता गोभी, ब्रोकोली के लिए 500-700 ग्राम बीज और 100 से 150 वर्ग मीटर नर्सरी क्षेत्र की आवश्यकता होती है, ताकि एक हेक्टेयर में रोपाई की जा सके। बैंगन के लिए 200-300 ग्राम, गाँठ गोभी (नोल-खोल) के लिए 700-800 ग्राम और प्याज के लिए 8-10 किलोग्राम बीज और लगभग 500 वर्ग मीटर नर्सरी क्षेत्र की आवश्यकता होती है, ताकि एक हेक्टेयर में पौधरोपण किया जा सके।

पौधशाला में बीज बोना

नर्सरी में बीज बोने के कई तरीके होते हैं, जैसे कि छिड़काव, लाइन बोआई और विभिन्न गमलों में बुवाई। इनमें से सब्जियों के पौधे उगाने के लिए लाइन बुवाई सबसे बेहतर विधि है। पंक्तियाँ 0.5 सेमी गहरी पूर्व से पश्चिम दिशा में समानांतर बनायीं जाती हैं और इनके बीच 5 सेमी की दूरी रखी जाती है। बीजों को 1-2 सेमी की दूरी पर अलग-अलग बोया या रखा जाता है। बीजों को रेत, मिट्टी और अच्छी तरह सड़ी हुई और छनी हुई गोबर की खाद या पत्तियों की खाद के मिश्रण से 1:1:2 के अनुपात में ढक दिया जाता है। बीज ढकने के बाद हल्की सिंचाई गुलाब की झारी की मदद से की जाती है।

पलवार प्रबन्धन

- बीज बोने के तुरंत बाद अंकुरण तक बीज क्यारी को पलवार से ढकें।
- मल्चिंग तापमान को नियंत्रित करने, नमी बनाए रखने, बारिश की बूंदों से बीजों को हिलने से बचाने, खरपतवार को दबाने और विघटित होने के बाद खाद के रूप में उपयोग के लिए महत्वपूर्ण है।

पानी देना

पौधशाला में बीज अंकुरित होने तक हल्की सिंचाई के साथ पानी देना आवश्यक होता है, इसके लिए रोस कैन का उपयोग किया जाता है। अतिरिक्त बारिश का पानी या सिंचाई का पानी समय-समय पर बाहर निकालना चाहिए, अन्यथा अधिक पानी के कारण पौधे मर सकते हैं।

पतला करना

यह एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसमें कमजोर, अस्वस्थ, बीमार, कीट-क्षति वाले और घने पौधों को नर्सरी बिस्तरों से हटा दिया जाता है, पौधों के बीच लगभग 1.0 सेमी की दूरी बनाए रखते हुए। पतला करने से प्रत्येक पौधे को समान रूप से प्रकाश और हवा मिलती है।

खरपतवार नियंत्रण

बीज बोने के बाद तुरंत खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए पूर्व-विकास (प्री-इमर्जेंस) शाकनाशियों का छिड़काव उपयुक्त होता है। स्टॉम्प 3 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का छिड़काव बीज को सड़ी हुई गोबर की खाद, मिट्टी और बालू के मिश्रण से ढकने के बाद किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, पश्चात-विकास (पोस्ट-इमर्जेंस) शाकनाशी जैसे बासालिन, 2,4-डी, और राउंडअप भी प्रभावी साबित होते हैं।

पौधशाला से पौधों का उखाड़ना और पैकिंग

जब पौध (25-30 दिनों में) तैयार हो जाए, तो जिन पौधों पर 5-6 पत्तियाँ हों, उन्हें सावधानी से उखाड़कर रोपाई के लिए भेजा जाना चाहिए। पौधों की जड़ों को नुकसान न पहुँचे, इस बात का ध्यान रखें ताकि वे नई जगह पर आसानी से स्थापित हो सकें। 50-100 पौधों को बंडल में बाँधकर उनकी जड़ों को इस घोल में डुबोया जाता है। पौधों को इस तरह से पैक किया जाना चाहिए कि वे अपनी ताजगी न खोएं और नई जगह पर आसानी से स्थापित हो सकें।

निष्कर्ष

अच्छी गुणवत्ता वाले सब्जी पौधों का उत्पादन उच्च उपज और गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। असंवैधानिक तरीके से उगाए गए पौधों में खराब अंकुरण होता है और ये कीट, रोगों और बीमारियों से प्रभावित होते हैं। इससे मुख्य क्षेत्र में रोपाई के समय पौधों की मृत्यु दर बढ़ जाती है, और किसानों को कम उपज का सामना करना पड़ता है। वैज्ञानिक नर्सरी उगाने की तकनीकों के आगमन ने स्वस्थ सब्जी पौधों की वृद्धि के लिए नए अवसर खोले हैं, जिससे जैविक और अवैज्ञानिक तनावों का कम प्रभाव पड़ता है। ऐसी नवीन तकनीकें किसानों को उच्च उपज और अच्छा मूल्य प्राप्त करने में सहायता कर रही हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

बिहार का 'ब्लैक डायमंड' मखानाः जानें इसकी खेती के राज

सुधीर दास*, प्रमिला, ए. पी. राकेश, संतोष कुमार सिंह एवं टी. पी. महतो

उद्यान विज्ञान विभाग, पंडित दीन दयाल उपाध्याय उद्यानिकी एवं वाणिकी महाविद्यालय, पिपराकोठी, पूर्वी चम्पारण

पत्राचारकर्ता: sudhir.das@rpcau.ac.in

परिचय

मखाना एक विशेष प्रकार का जलीय पौधा है जिसे 'गोरगोन नट' या 'फॉक्स नट' भी कहा जाता है एवं वैज्ञानिक भाषा में *यूरेल फेरॉक्स सैलिस्व* कहते है। यह स्थिर जल जैसे तालाब, झील, तथा गड्ढे में उपजता है। यह उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु का पौधा है। इसके सही विकास एवं बढ़वार के लिए 20^{o} सेंटीग्रेड से 35^{o} सेंटीग्रेड तापमान, सापेक्षिता आर्द्रता (50 प्रतिशत से 90 प्रतिशत) तथा 100 सेमी. से 250 सेमी. वार्षिक वर्षा का होना अति आवश्यक है। मखाना के पौधे सड़ने के बाद मिट्टी में 34.35 किलोग्राम नत्रजन, 56.0 किलोग्राम फॉस्फोरस, 53.07 किलोग्राम पोटाश, 27.26 किलोग्राम लौह और 12.31 किलोग्राम मैंगनिज प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष के दर से आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते है। मखाना की पहली प्रजाति जिसका नाम स्वर्ण वैदेही है, का विकास भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, मखाना अनुसंधान केन्द्र, दरभंगा द्वारा 15 नवम्बर, 2013 को किया गया था जिसकी उत्पादन क्षमता खेतों में 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा तालाबों में 18 से 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। मखाना लावा में ट्रिपसीन, सिसटाईन, फिनाईलएलानीन, कैल्शियम, मैगनेशियम, सोडियम, लौह और जिंक प्रचुर मात्रा में पाई जाती है।

मखाना की उपलब्धता

मखाने की पहचान पानी की सतह पर फैले इसके गोलाकर कटीले पत्ते से की जाती है। मखाना विश्व के अत्यधिक उष्ण एवं उपोष्ण-कटिबंधीय के दक्षिण पूर्व तथा पूर्व एशिया के विभिन्न क्षेत्रों मे उपलब्ध है। मखाना चीन, नेपाल, बांग्लादेश, कोरिया, जापान, रूस, उत्तरी अमेरिका में प्राकृतिक रूप में पाया जाता है। भारत में उत्तरी बिहार, पूर्वी उतर प्रदेश तथा नेपाल सीमा के तराई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। इसके अलावा पश्चिम बंगाल, मणिपुर, राजस्थान, मध्य प्रदेश, त्रिपुरा, असम, तथा बांग्लादेश के सीमावर्ती क्षेत्रों में भी पाया जाता है।

कृषि क्षेत्र एवं उत्पादन

मखाना की अधिकांश खेती बिहार, पश्चिम बंगाल और असम में होती है तथा अन्य प्रदेशों में कम होती है। भारत में मखाना उत्पादन का कुल 85 प्रतिशत उत्पादन बिहार में होता है। बिहार में मखाने का मुख्य रूप से उत्पादन सहरसा, कटिहार, मधुबनी, दरभंगा, सीतामढ़ी, पूर्णिया, सुपौल, किशनगंज एवं अररिया में होता है। भारत में मखाने का कुल उत्पादन क्षेत्र लगभग 15,000 हेक्टर है। अनुमानतः 1,20,000 टन बीज मखाना (गुर्री) उत्पादन होता है जिससे मखाना का लावा लगभग 40,000 टन प्राप्त होता है। किसानों को मखाना उत्पादन से लगभग 250 करोड़ रूपया प्राप्त होता है तथा

भारत के बाजार में मखाना लावा का 550 करोड़ रूपया का व्यापार होता है।

लोकप्रियता एवं महत्व

मखाना के जैविक उत्पादन होने के कारण तथा पौष्टिक आहार व गुणवता के मद्देनजर इसकी निर्यात की प्रबल संभावनायें हैं। इस प्रकार मखाना के उत्पादन से जुड़े किसानों के अर्थोपार्जन एवं उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी तथा इसके निर्यात से देश की विदेशी मुद्रा में भी बढोतरी होगी।

तालाब विधि

परम्परागत विधि में मखाना के तालाबों में मछलियाँ जैसे कतला, मृगाल, माँगुर, सींधी, केवई, गरई, ट्रैश आदि जंगली मछलियाँ बाढ़ के पानी के साथ प्रवेश कर जाती है जिसे किसान अतिरिक्त फसल के रूप में लेते है। इस विधि में 80 किलोग्राम स्वस्थ मखाना बीज को एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के तालाब में दिसम्बर के महीने में हाथों से छिटतें है। बीज को रोपाई से एक दिन पहले 1.0 किलोग्राम बीज को 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम से उपचारित करके पूरी रात छोड़ देना चाहिए तथा दूसरे दिन उपचारित बीज को तालाबों या खेतों में छिड़काव करना चाहिए। पौधे से पौधे एवं पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी 1 मीटर एवं 1.20 मीटर क्रमशः बनाये रखने के लिए अतिरिक्त पौधों को निकाल दिया जाता है।

रोपाई विधि

यह मखाना की खेती की नई विधि है जिसे मखाना अनुसंधान केन्द्र द्वारा विकसित किया गया है। इस विधि में मखाना के छोटे पौधों के जड़ को 0.2 प्रतिशत क्लोरोपाईरीफास के घोल तथा 0.1 प्रतिशत केपटान के घोल के मिश्रण में 6 से 8 घंटे के लिए डुबोकर रखना चाहिए। इसके उपरांत कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी 1.20 मीटर x 1.25 मीटर रखते हुए रोपाई करनी चाहिए। रोपाई का कार्य मार्च के अंतिम सप्ताह से अप्रैल के प्रथम सप्ताह के बीच हो जानी चाहिए। असामान्य वर्षा के समय किसानों को 10 से 13 बार तक की सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खेत की तैयारी

खेत की 2 से 3 गहरी जुताई के बाद ट्रैक्टर या देसी हल की सहायता से पाटा देकर खेत को मखाना की खेती के लिए तैयार करते हैं। मखाना की खेती के लिए खेत उपलब्ध होने पर मखाना के लिए खेत की तैयारी फरवरी के प्रथम सप्ताह से अप्रैल के दूसरे सप्ताह तक हर हाल में पूरी कर लेनी चाहिए। बिचड़ा के रोपाई से पूर्व खेतों के चारों तरफ के बाँध को 2 फीट ऊँचा बनाकर लगभग 1.50 फीट पानी भर देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

मखाना बड़े एवं भारी पत्तों वाला जलीय पौधा होने की वजह से ज्यादा पोषक तत्वों की आवश्यकता होती हैं। मखाना की फसल में औसतन 160 किलोग्राम यूरिया, 130 किलोग्राम डीएपी एवं 60 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करना चाहिए। परंतु इन रासायनिक खादों की सही मात्रा अलग-अलग क्षेत्रों के मिट्टी जाँच के उपरांत ही दी जा सकती है। कार्बनिक खाद (कम्पोस्ट) का उपयोग 20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से करनी चाहिए।

फसल प्रणाली में मखाना की खेती

खेतों में मखाना की खेती करने से मखाना के अलावा एक साल में एक ही खेत में तीन फसलों को आसानी से लिया जा सकता है। सामान्यतः मखाना आधारित लिए जाने वाले फसल प्रणाली जैसे मखाना-सिंघाड़ा, मखाना-बरसीम, मखाना-धान, एवं मखाना-गेहूँ है।

खरपतवार नियंत्रण

मखाने के विकास की प्रारंभिक अवस्था में अवांछनीय जलीय घासों जैसे सेमार (फर्न), हाइड्रिला, चरपतिया (पानी की बरसीम), जलीय मोथा, बमभूली इत्यादि का प्रकोप बढ़ जाता है। अतः इनकी समाप्ति के लिए पौधों की रोपाई के पहले गीली जुताई के समय 50 किलोग्राम करंज की खल्ली , 50 किलोग्राम अरंडी की खल्ली तथा 30 किलोग्राम चूना प्रति 500 वर्गमीटर के खेतों की दर से डालनी चाहिए। दूसरी सबसे अच्छी तकनीक यह है कि मखाना के तालाब व खेतों में तिलापीया (200 मिश्रित व्यस्क प्रति हेक्टेयर) तथा ग्रास कार्प (300 से 375 प्रति हेक्टेयर) जैसी मछलियों का प्रयोग करें। यह दोनों प्रकार की मछलियाँ कुछ ही दिनों में पूरे घास को खा जायेगी। तीसरी विधि रासायनिक तृणनाशीयों जैसे ग्लाइफोसेट (2.20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) तथा पाराक्वाट (0.90 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) का प्रयोग तभी करे जब उपरोक्त बतायें गये तरीकों से तालाबों में घास की समाप्ति न हों। इन रसायनों का पानी में रहने वालें घासों के सूखे पत्तों पर छिड़काव करें।

कीट एवं रोग प्रबंधन

प्रायः यह देखा गया है कि मखाना के फसल में कीट एवं रोग

की समस्या बहुत कम होती है परन्तु मार्च एवं अप्रैल महीने में माहु (एफीड) का प्रकोप बहुत बढ़ जाता है। जिसे नीम तेल का 3 मिली लीटर की मात्रा को 1 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से माहु की समस्या समाप्त हो जाती है।मखाना के फसल में दूसरी समस्या पत्ते में फफूंदीजनक झुलसा रोग लगने की होती है जिसे नियंत्रित करने के लिए कॉपर ऑक्सिक्लोराइड, डाइथेन जेड-78 या डाइथेन एम-45 का 0.3 प्रतिशत घोल का 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार

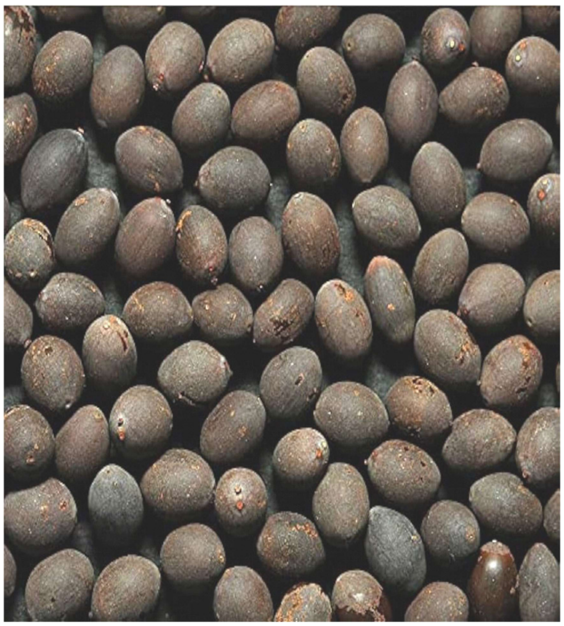

छिड़काव करना चाहिए।

बीज उत्पादन

तालाब विधि से मखाना की उन्नत किस्मों की खेती करने पर औसतन 1.6 से 2.0 टन/हेक्टेयर बीज का उत्पादन होता है जो बुआई के लिए प्रयुक्त बीज की आनुवांशिक क्षमता पर निर्भर करता है। जबकि खेती विधि से मखाना की खेती करने पर उसी बीज को इस्तेमाल करने पर उसकी उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है जो 2.8 से 3.0 टन/हेक्टेयर दर्ज की गई है।

पारंपरिक तालाब में मखाना की खेती पर आने वाले लागत का विवरण (तालाब का क्षेत्रफ = एक एकड़)

- पारंपरिक तालाब में मखाना उत्पादन में कुल लागत रुपये 36,576.00 प्रति एकड़ है।
- पारंपरिक तालाब में मखाना उत्पादन में कुल लाभ रुपये 1,20,000.00 प्रति एकड़ है।
- पारंपरिक तालाब में मखाना उत्पादन में कुल शुद्ध लाभ रुपये 83,424.00 है।
- खेत प्रणाली में मखाना की खेती पर आने वाले लागत का विवरण (खेत का क्षेत्रफलन = एक एकड़)
- खेत प्रणाली में मखाना उत्पादन में कुल लागत रुपये 63,228.00 प्रति एकड़है।
- खेत प्रणाली में मखाना उत्पादन में कुल लाभ रुपये 1,80,000.00 प्रति एकड़ है।
- खेत प्रणाली में मखाना उत्पादन में कुल शुद्ध लाभ रुपये 1,16,772.00 प्रति एकड़है।

निष्कर्ष

मखाना एक अत्यंत मूल्यवान जलीय फसल है, जो न केवल आर्थिक दृष्टि से लाभकारी है,बल्कि पोषण एवं औषधीय दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी है। इसकी वैज्ञानिक खेती किसानों के लिए आय का एक स्थायी स्रोत बन सकती है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ तालाब, झील या जलभराव वाली भूमि उपलब्ध हो।वैज्ञानिक पद्धति से की गई मखाना की खेती में -उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का चयन, उचित जल गहराई, जैविक खादों का प्रयोग, कीट एवं रोग प्रबंधन, और सही समय पर रोपाई व कटाई- जैसे कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

मूली की उत्पादन तकनीक

नीरज पाली* एवं समीर एब्सन टोपनो

उद्यान विभाग विज्ञान, शुआट्स, नैनी, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

पत्राचारकर्ता: nirajpali214@gmail.com

परिचय

मूली की फसल कच्ची सब्जी के रूप में इस्तेमाल करने के लिए उगाई जाती है। इसकी खेती कंद सब्जी के रूप में की जाती है। मूली का सेवन अधिकतर सलाद के रूप में किया जाता है। कच्ची मूली का सेवन करने से पेट सम्बंधित समस्याओ से छुटकारा मिल जाता है। मूली की फसल कम समय और कम लागत में अधिक पैदावार देने के लिए तैयार हो जाती है। इसलिए यह किसानो के लिए अधिक फायदे वाली खेती है। इसकी फसल को एक ही मौसम में दो बार प्राप्त किया जा सकता है। मध्यप्रदेश, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, पंजाब और उत्तर प्रदेश मूली के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं।

मूली के खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी, जलवायु और तापमानः मूली की खेती में बलुई दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है, इसके अलावा भूमि अच्छी जल-निकासी वाली होनी चाहिए। मूली की खेती में 6 से 7 के मध्य भूमि का P.H मान होना चाहिए। ठंडी जलवायु मूली की फसल के लिए काफी उचित होती है। इसके पौधे सर्दियो में गिरने वाले पाले को भी आसानी से सहन कर लेते है। गर्मियों के मौसम में इसके पौधे अच्छे से वृद्धि नहीं कर पाते है। इसके बीजो को अंकुरण के लिए 20 डिग्री तापमान तथा पौधों के विकास के समय 10 से 15 डिग्री के तापमान आवश्यकता होती है। मूली के पौधे न्यूनतम 4 डिग्री और अधिकतम 25 डिग्री तापमान को ही सहन कर सकते है। इससे अधिक तापमान होने पर कंदो की गुणवत्ता में कमी आ जाती है।

मूली की किस्में: मूली की कई देशी और विदेशी उन्नत किस्मे बाज़ार में मौजूद है, जिन्हे कम समय में अधिक पैदावार देने के लिए उगाया जाता है।

क) जापानी सफ़ेद : इस क़िस्म के पौधों को तैयार होने में 50 से 60 दिन का समय लगता है। इसके कंद एक फ़ीट तक लम्बे होते है। यह स्वाद में कम तीखी होती है । इस क़िस्म के पौधे प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 250 से 300 क्विंटल की पैदावार देते है।

ख) रेपिड रेड व्हाइट टिप्ड : मूली की इस क़िस्म के पौधों को तैयार होने में 25 से 30 दिन का समय लग जाता है, यह अधिक तेजी से पैदावार देने वाली क़िस्म है। जिसमे निकलने वाले कंदो का रंग सफ़ेद और लाला होता है। रेपिड रेड व्हाइट टिप्ड क़िस्म के पौधे एक ही मौसम में कई बार पैदावार देते है।

ग) हिसार न. 1: मूली की इस क़िस्म के पौधों को भारत के उत्तरी मैदानी राज्यों में उगाने के लिए तैयार किया गया है। इसमें निकलने वाले पौधों की जड़े सीधी और लम्बी पायी जाती है, जिसका बाहरी छिलका चिकना और सफ़ेद होता है। इस क़िस्म की मूली के स्वाद में मीठापन पाया जाता है। इसके पौधे रोपाई के 50 दिन बाद पैदावार देने के लिए तैयार हो जाते है, जिसका प्रति हेक्टेयर उत्पादन 250 क्विंटल तक होता है।

इसके अलावा भी मूली की कई उन्नत किस्मों को अधिक पैदावार देने के लिए तैयार किया है, जो इस प्रकार है- पूसा हिमानी, पूसा चेतकी, पूसा देशी, पूसा रेशमी, पूसा चेतकी, पंजाब पसंद, पंजाब अगेती, व्हाईट आइसीकिल, व्हाईट लौंग, सकुरा जमा, के एन- 1, जौनपुरी मूली, फ्रेंच ब्रेकफास्ट और स्कारलेट ग्लोब आदि।

मूली के फसल के लिए खेत की तैयारी, बुवाई और उर्वरक प्रबंधनः

मूली की खेती में बीजो की रोपाई से पहले खेत को तैयार कर लेना चाहिए। इसके लिए सबसे पहले मिट्टी पलटने वाले हल से खेत गहरी जुताई कर देनी चाहिए, इससे पुरानी फसल के अवशेष पूरी तरह से नष्ट हो जाते है। इसके बाद खेत में प्राकृतिक खाद के तौर पर 15 गाड़ी पुरानी गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देना होता है। खाद डालने के बाद कल्टीवेटर के माध्यम से दो से तीन तिरछी जुताई कर मिट्टी में खाद को अच्छी तरह से मिला दिया जाता है। इसके बाद

खेत में पानी लगा कर पलेव कर दे। इसके बाद खेत को कुछ समय के लिए ऐसे ही खुला छोड़ दे जब खेत की मिट्टी ऊपर से सूखी दिखाई देने लगे तब मिट्टी को भुरभुरा करने के लिए रोटावेटर से खेत में जुताई करवा दे ।इसके बाद खेत में पाटा लगाकर खेत को समतल कर दिया जाता है, जिससे खेत में जलभराव जैसी समस्या नहीं होती है। इसके बीजो की रोपाई मेड़ पर की जाती है, इसलिए खेत के समतल हो जाने के बाद एक से डेढ़ फ़ीट की दूरी रखते हुए मेड़ो को तैयार कर लिया जाता है। मूली के खेत में रासायनिक खाद को देने के लिए खेत की आखरी जुताई के बाद उसमे 50 KG सुपर फास्फेट, 100 KG पोटाश और 100 KG नाइट्रोजन की मात्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से दे। इसके अतिरिक्त पौधों की जड़ो को बीज रोपाई के एक महीने बाद 20 से 25 KG यूरिया की मात्रा देनी चाहिए।

मूली के बीजो की रोपाई का सही समय और तरीकाः मूली के बीजो की रोपाई समतल और मेड़ दोनों प्रकार की भूमि में कर सकते है । समतल भूमि में रोपाई करने के लिए ड्रिल विधि का इस्तेमाल किया जाता है, तथा बीजो की रोपाई के समय प्रत्येक बीज के मध्य में 5 सेमी. की दूरी रखी जाती है। इसके अतिरिक्त यदि मूली के बीजो की रोपाई मेड़ पर हाथ द्वारा की जाती है, तो प्रत्येक बीज के मध्य 5 सेमी. की दूरी अवश्य रखे। इसके अलावा कुछ किसान भाई बीजो की रोपाई छिड़काव विधि द्वारा भी करते है। छिड़काव विधि में मूली के बीजो को समतल खेत में छिड़क दिया जाता है, जिसके बाद खेत में कल्टीवेटर लगाकर पीछे हल्का पाटा बांधकर दो से तीन हल्की जुताई की जाती है। इससे बीज 3 से 5 सेमी. की गहराई में दब जाता है। सामान्य तौर पर इसकी खेती को पूरे वर्ष किया जा सकता है, किन्तु सर्दियों के मौसम में इसकी खेती करने से अच्छी पैदावार प्राप्त कर सकते है।

मूली के पौधों की सिंचाईः मूली के बीजो की रोपाई को नम भूमि में किया जाता है। इसलिए पौध रोपाई के तुरंत बाद इसकी पहली सिंचाई कर दी जाती है। इसके पौधों को सामान्य सिंचाई की आवश्यकता होती है। यदि इसके बीजो की रोपाई सूखी भूमि में की गई है, तो उस दौरान इसके बीजो को अंकुरित होने तक हल्की सिंचाई की जरूरत होती है। मूली के पौधों की सिंचाई गर्मियों के मौसम में दो से तीन बार की जाती है, वही बारिश के मौसम में जरूरत पड़ने पर ही सिंचाई करनी चाहिए।

मूली की फसल में खरपतवार नियंत्रणः मूली के खेत में खरपतवार नियंत्रण के लिए रासायनिक और प्राकृतिक दोनों की विधियो का इस्तेमाल किया जाता है। मूली के पौधों में प्राकृतिक तरीके से खरपतवार नियंत्रण के लिए निराई- गुड़ाई की जाती है, इसके पौधों को केवल दो गुड़ाई की ही जरूरत होती है, जिसमे पहली गुड़ाई को 20 दिन बाद किया जाता है, तथा दूसरी गुड़ाई 15 दिन के बाद किया जाता है। इसके अलावा यदि आप रासायनिक विधि से खरपतवार पर नियंत्रण पाना चाहते है, तो उसके लिए आपको पेन्डीमिथालिन की उचित मात्रा का छिड़काव खेत में बीज रोपाई के बाद करनी होती है।

मूली के पौधों में लगने वाले रोग एवं उनकी रोकथाम

क) माहु रोगः इस क़िस्म का रोग कीट के रूप में समूह बनाकर पौधों की पत्तियों पर आक्रमण करता है। इसके कीट आकार में अधिक छोटे होते है, जो पत्तियों का रस चूस कर उन्हें पीला कर देते है। इस क़िस्म के रोग का प्रभाव अक्सर जलवायु परिवर्तन के दौरान देखने को मिलता है। मैलाथियान की उचित मात्रा का छिड़काव पौधों पर कर इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

ख)बालदार सुंडीः यह बालदार सुंडी रोग पौधों पर कसिी भी अवस्था में लग सकता है। इस क़िस्म के रोग का कीट पौधों की पत्तियों को खाकर उन्हें छलनी कर देता है। जिससे पौधे अपना भोजन नहीं ग्रहण कर पाते है, और उनका विकास पूरी तरह से रुक जाता है। क्विनालफॉस या सर्फ की उचित मात्रा का छिड़काव करने से इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

ग) झुलसा रोगः इस क़िस्म का रोग पौधों पर जनवरी और मार्च के महीने में आक्रमण करता है। झुलसा रोग से प्रभावित होने पर पौधों की पत्तियों पर काले रंग के धब्बे दिखाई देने लगते है। रोग बढ़ने की स्थिति में यह पूरी पत्ती पर फ़ैल जाता है। मैन्कोजेब या कैप्टन दवा की उचित मात्रा का घोल बनाकर छिड़काव करने से इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

घ) काली भुंडी का रोगः यह काली भुंडी रोग पौधों की पत्तियों पर कीट के रूप में आक्रमण करते है। यह कीट रोग पौधों की पत्तियों को खाकर उसे पूरी तरह से नष्ट कर देता है। जिससे पौधा भोजन नहीं ग्रहण कर पाता है, और कुछ ही समय सूख कर नष्ट हो जाता है। इस रोग से पौधों को बचाने के लिए 10 से 12 दिन के अंतराल में मैलाथियान की उचित मात्रा का छिड़काव पौधों पर

करे।

ङ) **कीट आक्रमण रोगः** यह कीट रोग चुकंदर के पौधों पर अधिक आक्रमण करता है। इस कीट का लार्वा पौधों की पत्तियों को खाकर उन्हें नष्ट कर देता है, तथा रोग का आक्रमण बढ़ जाने पर पैदावार कम हो जाती है। मैलाथियान या एंडोसल्फान का उचित मात्रा में छिड़काव कर इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

मूली के फसल की कटाई और उपज

मूली के पौधे बीज रोपाई के दो महीने बाद उत्पादन देने के लिए तैयार हो जाते है। इसकी छोटी जड़ो की खुदाई एक महीने में भी की जा सकती है। इस दौरान मूली के आकार को देखते हुए इसकी खुदाई कर सकते है । मूली की खुदाई के बाद उन्हें अच्छे से साफ कर बाज़ार में बेचने के लिए भेज देना चाहिए। मूली के एक हेक्टेयर के खेत में तक़रीबन 250 क्विंटल की पैदावार प्राप्त की जा सकती है। मूली का बाज़ारी भाव गुणवत्ता के हिसाब से 3 से 4 रूपए तक होता है,जिससे किसान भाई इसकी एक बार की फसल से तक़रीबन सवा लाख की कमाई कर अच्छा लाभ कमा सकते है।

निष्कर्ष

मूली की खेती भारतीय किसानों के लिए कम लागत, कम अवधि और अधिक लाभ देने वाली फसल सिद्ध होती है। यह फसल न केवल किसानों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करती है, बल्कि पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण मानव स्वास्थ्य के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। मूली की विभिन्न देशी एवं उन्नत किस्में देश के अलग-अलग agro-climatic क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। इसके उत्पादन के लिए बलुई दोमट मिट्टी, उचित सिंचाई व्यवस्था और संतुलित उर्वरक प्रबंधन आवश्यक है। समय पर रोग और कीट नियंत्रण अपनाने से पैदावार में वृद्धि संभव है। मूली की फसल अल्प अवधि में तैयार होकर किसानों को शीघ्र आय प्रदान करती है, जिससे यह नगदी फसल के रूप में अत्यधिक लोकप्रिय है। उचित तकनीकी प्रबंधन, गुणवत्तापूर्ण बीज, उन्नत किस्मों का चयन और वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से मूली की उत्पादकता एवं गुणवत्ता दोनों में सुधार लाया जा सकता है। अतः मूली की उन्नत उत्पादन तकनीक अपनाकर किसान अपनी आय बढ़ाने के साथ-साथ देश की पोषण सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

फूलों की फसल में विशेष बागवानी कार्य

[1]राजेश साहू एवं [2]मेधा साहा*

[1]पुष्प विज्ञान एवं भू दृश्य कला विभाग, पंडित किशोरी लाल शुक्ला महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, राजनांदगाँव
[2]महात्मा गाँधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, दुर्ग

पत्राचारकर्ता: medhasahams@gmail.com

परिचय

फूल मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। इनका उपयोग सजावट,धार्मिक कार्य,औषधि,इत्र निर्माण और विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनों में किया जाता है। फूलों की खेती में अधिक उत्पादन,बेहतर गुणवत्ता और बाज़ार मूल्य प्राप्त करने के लिए सामान्य उद्यानिकी कार्यों के साथ–साथ कुछ विशेष बागवानी कार्य भी अपनायी जाती हैं। इन कार्यों का उद्देश्य पौधे की वृद्धि को नियंत्रित करना,अच्छे आकार–प्रकार के फूल प्राप्त करना तथा पौधे को संतुलित और आकर्षक बनाना है। नीचे प्रमुख बागवानी कार्य दी गई हैं:

क) मल्चिंग

मल्चिंग में क्यारियों की सतह पर प्लास्टिक शीट या जैविक सामग्री बिछाई जाती हैं ताकि मिट्टी की नमी बनी रहे और खरपतवार कम हो। सामान्य जैविक मल्च में गेहूँ का भूसा, कपास के बीज के छिलके, मूँगफली के छिलके और पुआल जैसी सामग्री शामिल होती है। इन्हें उन क्यारियों पर समान रूप से फैलाया जाता है, जहाँ पौधे उगाए जाते हैं इससे मिट्टी में नमी लंबे समय तक बनी रहती है और सिंचाई की आवश्यकता कम होती है।

प्लास्टिक शीट मल्च खरपतवार नियंत्रण में अत्यंत प्रभावी है और मिट्टी के तापमान को स्थिर रखकर जड़ प्रणाली के विकास को भी बढ़ावा देती है। वहीं जैविक मल्च धीरे-धीरे सड़कर मिट्टी में कार्बन और पोषक तत्व जोड़ता है जिससे मिट्टी की बनावट और उपज क्षमता में सुधार होता है। फूलों की फसलों में मल्चिंग से उत्पादन की गुणवत्ता बेहतर होती है। कटाई के समय फूल अधिक ताज़ा रहते हैं और मिट्टी का कटाव भी कम होता है। सही प्रकार का मल्च चुनकर और उसे सही समय पर

नवीनीकृत करके यह तकनीक और अधिक लाभकारी बनाई जा सकती है।

ख) पिंचिंग

पिंचिंग फूलों की फसलों में अपनायी जाने वाली एक महत्वपूर्ण विशेष बागवानी पद्धति है। इसमें पौधे की शीर्ष कलिका को खुली पत्तियों सहित हटा दिया जाता है। इस प्रक्रिया से पौधे की ऊँचाई नियंत्रित रहती है और वह अधिक झाड़ीदार बनता है। पिंचिंग से शाखाओं की संख्या बढ़ती है, जिससे फूलों की संख्या और गुणवत्ता दोनों में सुधार होता है।

यह तकनीक विशेष रूप से गेंदा, गुलदाउदा, कार्नेशन, गुलाब, गैलार्डिया, चाइना ऐस्टर और वार्षिक गुलदाउदी जैसी फूलों की फसलों में अपनायी जाती है। पिंचिंग न केवल पौधों को संतुलित आकार देती है बल्कि लंबे समय तक अधिक और बेहतर फूल प्राप्त करने में भी सहायक होती है।

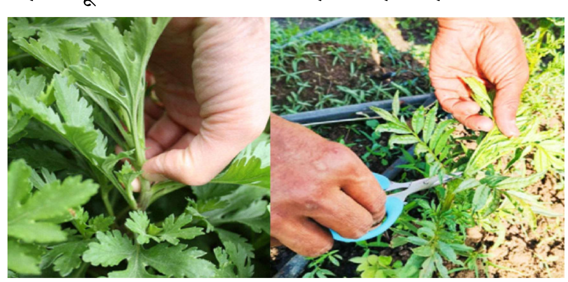

ग) डिसबडिंग

डिसबडिंग फूलों की फसलों में अपनायी जाने वाली एक

महत्वपूर्ण बागवानी प्रक्रिया है। इसमें अनावश्यक कलियों को हटा दिया जाता है ताकि पौधे की शक्ति और पोषण कम कलियों में केंद्रित हो सके। इससे शेष फूलों का आकार बड़ा. स्वस्थ और आकर्षक बनता है।

♦ स्टैण्डर्ड गुलदाउदी और स्टैण्डर्ड कार्नेशन में पार्श्व कलियों को हटा दिया जाता है और केवल केंद्रीय कली को रहने दिया जाता है। इससे एक बड़ा और सुंदर फूल प्राप्त होता है।

♦ स्प्रे गुलदाउदी और स्प्रे कार्नेशन में केंद्रीय कली को हटाया जाता है और पार्श्व कलियों को सुरक्षित रखा जाता है। इससे एक ही तने पर कई मध्यम आकार के फूल खिलते हैं।

डिसबडिंग की यह विधि प्रायः गुलाब,गुलदाउदी,कार्नेशन और डहलिया जैसी फसलों में अपनाया जाता हैं।

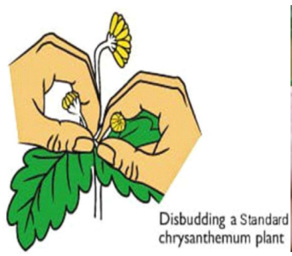

घ) डिस-शूटिंग (Dis-shooting)

डिस-शूटिंग फूलों की खेती में अपनाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण विशेष बागवानी तकनीक है। इसमें पौधे की अतिरिक्त पार्श्व शाखाओं या कोपलों को हटा दिया जाता है ताकि पौधे की शक्ति सीमित शाखाओं में केंद्रित हो सके। इससे फूलों का आकार,गुणवत्ता और स्वरूप बेहतर हो जाता है।

उदाहरण के लिए,यदि किसी पौधे से केवल तीन बड़े और आकर्षक फूल लेने हो, तो उसकी केवल तीन मज़बूत पार्श्व शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है और बाकी सभी को शुरुआती अवस्था में ही हटा दिया जाता है।

यह तकनीक मुख्य रूप से गुलदाउदी गुलाब और कार्नेशन जैसी फसलों में अपनाई जाती है। डिस-शूटिंग से पौधे का संतुलित विकास होता है और बाजार में पसंद आने वाले बड़े आकार के फूल प्राप्त होते हैं।

ङ) पर्णहरण (Defoliation)

पर्णहरण (Defoliation) फूलों की खेती में किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसमें पौधों की अनावश्यक पत्तियों को हटा दिया जाता है ताकि फूलों का आकार और गुणवत्ता बेहतर हो सके। साथ ही पत्तियों को हटाने से पौधे से वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाती है जिससे जल-संकट की स्थिति में पौधा अपनी नमी को सुरक्षित रख पाता है।

पर्णहरण की प्रक्रिया दो तरीकों से की जा सकती है -

1. **हाथ से :** पत्तियों को सीधे तोड़कर हटाना।
2. **रसायनों द्वारा**: विशेष रसायनों का प्रयोग करके पत्तियों को गिराना।

यह तकनीक मुख्य रूप से जैस्मीन और एंथुरियम जैसी फूलों की फसलों में अपनाई जाती है। पर्णहरण से पौधे का संतुलित विकास होता है और बड़े आकार व अधिक आकर्षक फूल प्राप्त होते हैं।

च) डिसकरिंग

पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अवस्था के दौरान मुख्य तने के आधार से अक्सर छोटे-छोटे नए पौधे या कोपलें निकलती रहती हैं। इन छोटी पार्श्व कलियों या पौधों को 'सकर' कहा जाता है। जब इन सकर्स को पौधे से हटा दिया जाता है तो इस प्रक्रिया को डिसकरिंग कहते हैं।

डिसकरिंग करने का मुख्य उद्देश्य पौधे की अनावश्यक और अत्यधिक वृद्धि को रोकना है ताकि पौधे की शक्ति और पोषण मुख्य तने तथा फूलों के विकास में ही लग सके। इससे पौधा संतुलित और स्वस्थ रूप से बढ़ता है तथा फूलों की गुणवत्ता

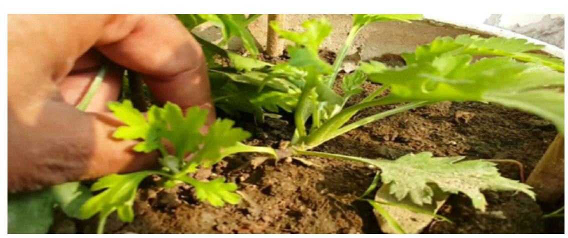

में भी सुधार होता है। यह तकनीक विशेष रूप से गुलदाउदी जैसी फसलों में अपनाई जाती है।

7. सहारा देना (Staking)

कुछ फूलों की फसलें बहुत ऊँची हो जाती हैं और उनके सही विकास के लिए सहारा देना आवश्यक होता है। ताकि पौधे सीधे खड़े रह सकें और गिरें नहीं। यदि इन्हें सहारा न दिया जाए तो पौधे टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं और फूलों की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

जैसे ग्लैडियोलस और गुलदाउदी जैसी ऊँची बढ़ने वाली फसलों को उचित सहारा देना ज़रूरी होता है। इसके लिए पौधों को बाँस की लकड़ी, मजबूत लकड़ी की छड़ों या लोहे की जालीनुमा तारों से सहारा दिया जाता है।

भारत में सामान्यतः पौधों को सहारा देने के लिए बाँस या उसके टुकड़ों का उपयोग किया जाता है, जो पौधों के आकार और प्रकार के अनुसार चुने जाते हैं। स्टैकिंग से पौधे सीधे और संतुलित रहते हैं साथ ही हवा या पानी से गिरने का खतरा कम होता है और फूलों की गुणवत्ता एवं बाज़ार मूल्य बेहतर होता है।

8. छंटाई (Pruning)

छंटाई (Pruning) पौधों की एक महत्वपूर्ण बागवानी प्रक्रिया है। इसमें पौधों के अनावश्यक हिस्सों जैसे तने, शाखाएँ, पत्तियाँ, जड़ें या शीर्ष कलिका को सावधानीपूर्वक हटाया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य पौधे की संरचना को सही बनाए रखना और उसकी उपयोगिता को बढ़ाना है।

छंटाई करने से पौधे को एक निश्चित आकार मिलता है और उसका मजबूत ढांचा विकसित होता है। इसके अलावा, यह प्रक्रिया पौधे की वृद्धि को संतुलित करती है और बेहतर गुणवत्ता वाले फूलों के उत्पादन में सहायक होती है। यह तकनीक मुख्य रूप से गुलाब और जैस्मीन जैसी फूलों की फसलों में अपनायी जाती है।

9.जाल लगाना

नेटिंग कार्नेशन की फसल में अपनायी जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण विशेष बागवानी पद्धति है। कार्नेशन के पौधों को सही और सीधा बढ़ने के लिए उचित सहारे की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि स्टैण्डर्ड और स्प्रे दोनों प्रकार की कार्नेशन फसलों में नेटिंग की जाती है।

इस प्रक्रिया में तार या जालीनुमा जाल को पौधों के ऊपर 3 से 4 परतों में लगाया जाता है और जैसे-जैसे पौधे बढ़ते हैं। जाल को ऊपर उठाया जाता है। परतों का आकार इस प्रकार होता है।

पहली परत : 7.5 × 7.5 सेमी

दूसरी परत : 10 × 10 सेमी

तीसरी परत : 12.5 × 12.5 सेमी

चौथी परत : 20 × 20 सेमी

नेटिंग करने से पौधे सीधा और संतुलित रहते हैं। तनों के झुकने की समस्या नहीं होती और फूलों की गुणवत्ता तथा डंठल की लंबाई अच्छी प्राप्त होती है। जबकि सहारा न मिलने पर तने टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं एवं डंठल की लंबाई कम हो जाती है और फूलों की गुणवत्ता घट जाती है।

10. तनों को मोड़ना (Bending of Shoots)

बेंडिंग फूलों की फसलों में किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण कार्य है। जिसका उद्देश्य पौधों में निचले या आधारभूत तनों की संख्या बढ़ाना और पौधे का मजबूत ढांचा तैयार करना है। यह प्रक्रिया विशेष रूप से गुलाब की खेती में अपनाई जाती है। पौधे लगाने के लगभग चार सप्ताह बाद मुख्य तने को धीरे से मोड़ा जाता है। यह मोड़ आमतौर पर दूसरी पत्ती के पास या पौधे के क्राउन क्षेत्र के निकट किया जाता है। बेंडिंग से पौधे में अधिक संख्या में नए पार्श्व तने निकलते हैं। जिससे पौधा झाड़ीदार और मजबूत बनता है। इसके परिणामस्वरूप लंबे समय तक अधिक और उच्च गुणवत्ता वाले फूल प्राप्त होते हैं।

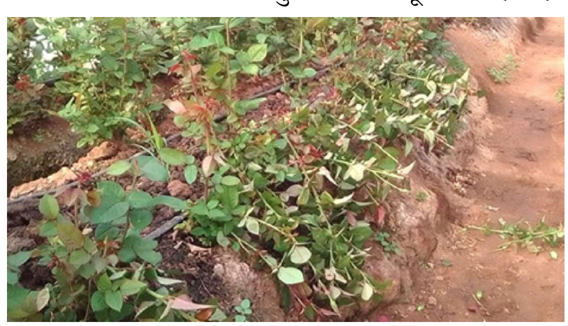

11.जड़ों की छंटाई (Wintering)

विंटरिंग को जड़ों की छंटाई (root pruning) का विकल्प माना जाता है और यह तकनीक विशेषकर भारत के गर्म क्षेत्रों में अपनायी जाती है, जहाँ रूट प्रूनिंग उपयुक्त नहीं होती।

इस प्रक्रिया में पौधों को कुछ दिनों तक पानी देना बंद कर दिया जाता है और तने के आसपास की ऊपरी मिट्टी हटाकर जड़ों को धूप में उजागर किया जाता है। यह अवधि पौधे की आयु प्रकृति और सहनशीलता के अनुसार 3 से 15 दिनों तक रहती है। इसके बाद जड़ों को फिर से वही मिट्टी डालकर ढक दिया जाता है। जिसे गोबर की खाद से समृद्ध किया जाता है और पौधे को पर्याप्त पानी दिया जाता है। विंटरिंग मुख्य रूप से गुलाब और चमेली जैसे सजावटी पौधों मेंअपनायी जाती है।

सारणीः विभिन्न फूलों की विशेष बागवानी कार्यों का संक्षिप्त विवरण

क्रमांक	विशेष बागवानी प्रथाओं	उद्देश्य	उदाहरण
1.	पिंचिंग	झाड़ीदार वृद्धि. अधिक शाखाएँ व फूल	गेंदा, गुलदाउदी, कार्नेशन
2.	डिसबडिंग	फूलों का आकार व गुणवत्ता सुधारना	गुलदाउदी, कार्नेशन, गुलाब
3.	डिस-शूटिंग	सीमित मजबूत शाखाएँ, अच्छे फूल	गुलदाउदी, गुलाब
4.	पर्णहरण	वाष्पोत्सर्जन कम करना, पुष्पन सुधार	जैस्मीन, एंथुरियम
5.	डिसकरिंग	अनावश्यक सकर्स हटाना	गुलदाउदी
6.	स्टैकिंग	लंबे पौधों को सहारा देना	ग्लैडियोलस, गुलदाउदी
7.	नेटिंग	पौधों को जाल से सहारा देना	कार्नेशन
8.	बेंडिंग	अधिक पार्श्व शाखाएँ विकसित करना	गुलाब
9.	छंटाई	संरचना सुधारना, मजबूत ढांचा	गुलाब, जैस्मीन
10.	विंटरिंग	जड़ों को विश्राम देकर पुष्पन सुधारना	गुलाब, जैस्मीन
11.	रीपोटिंग	नए माध्यम में रोपाई, सकर्स से नए पौधे	एंथुरियम

निष्कर्ष

फूलों की फसलों में विशेष बागवानी पद्धतियाँ जैसे पिंचिंग, डिसबडिंग, डिस-शूटिंग, पर्णहरण, डिसकरिंग, स्टैकिंग, नेटिंग, बेंडिंग प्रूनिंग, विंटरिंग और रीपोटिंग न केवल पौधों की वृद्धि और विकास को नियंत्रित करती हैं बल्कि फूलों की संख्या, आकार, गुणवत्ता और बाज़ार मूल्य को भी बढ़ाती हैं। इन तकनीकों के उचित उपयोग से पौधे संतुलित, झाड़ीदार और स्वस्थ बनते हैं तथा लम्बे समय तक उच्च गुणवत्ता वाले फूल प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार, इन पद्धतियों को अपनाकर फूलों की खेती को अधिक लाभकारी और वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत बनाया जा सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

जैविक बीज उत्पादन

नीरज नाथ परिहार[1] , ज्वाला परते[2] एवं रोहित गोपीचंद चव्हाण[3]

[1एवं2]कृषि विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान प्रौद्योगिकी व अनुसंधान स्कूल, सरदार पटेल विश्व विद्यालय, बालाघाट, मध्य प्रदेश

[3]कृषि विज्ञान विभाग, संजीवनी महाविद्यालय, चापोली, महाराष्ट्र

पत्राचारकर्ता: nparihar427@gmail.com

परिचय

''जैविक खेती के सिद्धांतों का पालन करते हुए बीजों का उत्पादन करना। इसमें सिंथेटिक कीटनाशकों, उर्वरकों और आनुवांशिक रूप से संशोधित जीवों (जीएमओ) के उपयोग पर प्रतिबंध होता है।''

जैविक बीज उत्पादन के मुख्य पहलू

मिट्टी का स्वास्थ्यः जैविक बीज उत्पादन में, मिट्टी की उर्वरता और स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए जैविक पदार्थों, फसल चक्रण और हरी खाद का उपयोग किया जाता है। मिट्टी के स्वास्थ्य को कार्बनिक रूप से सुधारने के लिए, कार्बनिक पदार्थों को मिट्टी में शामिल करना, जैसे कि खाद, कम्पोस्ट, और हरी खाद। इससे मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता, और पोषक तत्वों की उपलब्ध्ता में सुधार होता है।

मिट्टी के स्वास्थ्य को कार्बनिक रूप से सुधारने के कुछ तरीकेः

- **खाद और कम्पोस्ट का उपयोगः** खाद और कम्पोस्ट कार्बनिक पदार्थों का एक उत्कृष्ट स्रोत हैं जो मिट्टी में पोषक तत्वों और कार्बनिक पदार्थों को जोड़ते हैं।
- **हरी खाद का उपयोगः** हरी खाद में उगाई जाने वाली फसलें, जैसे कि फलियां, मिट्टी में नाइट्रोजन और अन्य पोषक तत्वों को जोड़ती हैं।
- **मल्चिंगः** मल्चिंग मिट्टी की सतह पर कार्बनिक पदार्थों की एक परत जोड़ती है, जो मिट्टी के तापमान को नियंत्रित करने, नमी को बनाए रखने, और खरपतवारों को दबाने में मदद करती है।
- **फसल चक्रणः** फसल चक्रण मिट्टी में विभिन्न पोषक तत्वों को संतुलित करने और मिट्टी जनित बीमारियों और कीटों को कम करने में मदद करता है।
- **कवर फसलेंः** कवर फसलें मिट्टी को कटाव से बचाने और मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों को जोड़ने में मदद करती हैं।
- **बायोचार का उपयोगः** बायोचार, जो जैवमास को जलाने से बनता है, मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों को जोड़ने का एक स्थायी तरीका है।
- **जैविक उर्वरकों का उपयोगः** जैविक उर्वरक, जैसे कि खाद, पौधों के लिए पोषक तत्वों का एक उत्कृष्ट स्रोत हैं।

कार्बनिक पदार्थों के लाभ

- **मिट्टी की संरचना में सुधारः** कार्बनिक पदार्थ मिट्टी के कणों को एक साथ बांधते हैं, जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है और पानी और हवा का बेहतर प्रवाह होता है।
- **जल धारण क्षमता में वृद्धिः** कार्बनिक पदार्थ मिट्टी की पानी को धारण करने की क्षमता को बढ़ाते हैं, जिससे पौधों को अधिक समय तक नमी मिलती है।
- **पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धिः** कार्बनिक पदार्थ मिट्टी में पोषक तत्वों को छोड़ते हैं, जिससे पौधों को आसानी से उपलब्ध होते हैं।
- **सूक्ष्मजीव गतिविधि में वृद्धिः** कार्बनिक पदार्थ मिट्टी के सूक्ष्मजीवों के लिए भोजन प्रदान करते हैं, जो पोषक तत्वों को छोड़ने और मिट्टी के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- **रोग दमनः** कार्बनिक पदार्थ मिट्टी में रोग पैदा करने वाले सूक्ष्मजीवों को दबाने में मदद करते हैं, जिससे पौधों को स्वस्थ रखने में मदद मिलती है।
- **अपरदन में कमीः** कार्बनिक पदार्थ मिट्टी के कटाव को कम करने में मदद करते हैं, जिससे उपजाऊ मिट्टी की हानि कम होती है।
- **कीट और रोग प्रबंधनः** कीटों और रोगों को नियंत्रित करने के लिए, जैविक बीज उत्पादन में मित्र कीटों, फसल चक्रण, और जैविक कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। जैविक विधि से कीट और रोग प्रबंधन का अर्थ है, रासायनिक

कीटनाशकों और फफूंदनाशकों का उपयोग किए बिना, प्राकृतिक तरीकों से कीटों और बीमारियों को नियंत्रित करना। इसमें फसल चक्रण, सहजीवी पौधों का उपयोग, प्राकृतिक परभक्षियों का संरक्षण और जैविक कीटनाशकों का उपयोग शामिल है। कुछ स्रोतों के अनुसार।

जैविक कीट प्रबंधन के तरीके

फसल चक्रणः एक ही खेत में लगातार एक ही फसल उगाने से कीटों और बीमारियों का प्रकोप बढ़ सकता है। फसल चक्रण, जिसमें विभिन्न प्रकार की फसलों को बारी-बारी से उगाया जाता है, कीटों और बीमारियों को नियंत्रित करने में मदद करता है।

सहजीवी पौधों का उपयोगः कुछ पौधे कीटों को आकर्षित करते हैं, जबकि अन्य कीटों को पीछे हटाते हैं। उदाहरण के लिए, गेंदा लगाने से सूत्रकृमि (nematodes) को नियंत्रित किया जा सकता है। विकिपीडिया के अनुसार।

प्राकृतिक परभक्षियों का संरक्षणः पक्षी, मेंढक, सांप और मित्र कीट जैसे प्राकृतिक परभक्षियों को अपने खेत में आकर्षित करें। ये कीटों को खाकर उनकी आबादी को नियंत्रित करते हैं। कृषि विभाग के अनुसार।

प्रमाणनः जैविक बीज उत्पादन के लिए, एक प्रमाणित जैविक प्रमाणन निकाय से प्रमाणन प्राप्त करना आवश्यक है।

जैविक बीज उत्पादन के लाभ

- **पर्यावरण के लिए बेहतरः** जैविक बीज उत्पादन में सिंथेटिक रसायनों का उपयोग नहीं किया जाता है, जिससे पर्यावरण पर कम प्रभाव पड़ता है।
- **स्वस्थ भोजनः** जैविक बीज से उगाए गए खाद्य पदार्थ अधिक पौष्टिक और स्वस्थ होते हैं।
- **किसानों के लिए बेहतरः** जैविक बीज उत्पादन से किसानों को अधिक आय प्राप्त हो सकती है, क्योंकि जैविक उत्पादों की कीमतें अधिक होती हैं।
- **किसानों की आत्मनिर्भरताः** जैविक बीज उत्पादन किसानों को बीज के लिए दूसरों पर निर्भर रहने से बचाता है।

जैविक बीज उत्पादन की चुनौतियाँ

- **लागतः** जैविक बीज उत्पादन की लागत पारंपरिक बीज उत्पादन की तुलना में अधिक हो सकती है।
- **उपलब्धताः** जैविक बीजों की उपलब्धता अभी भी सीमित है।
- **प्रशिक्षणः** जैविक बीज उत्पादन के लिए किसानों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है।
- जैविक बीज उत्पादन एक सतत प्रक्रिया है जिसमें पर्यावरण, स्वास्थ्य और किसानों के लिए कई लाभ हैं।

निष्कर्ष

जैविक बीजों का निष्कर्ष यह है कि वे स्वास्थ्य और टिकाऊ कृषि दोनों के लिए महत्वपूर्ण हैं। ये बीज रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के बिना उगाए जाते हैं, जिससे पर्यावरण को लाभ होता है और मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित भोजन प्राप्त होता है। जैविक खेती में, जैविक बीज उत्पादकता बढ़ाने, मिट्टी को स्वस्थ रखने और पारंपरिक तरीकों की तुलना में बेहतर पर्यावरणीय प्रदर्शन प्रदान करने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ

1. https://www.gardeningknowhow.com/garden-how-to/propagation/seeds/organic seedinformation.htm.

2. https://apeda.gov.in/hindi/hi/OrganicProducts.

❖❖

ISSN No. 2583-3316

सिंघाड़ा की वैज्ञानिक खेती

सुधीर दास*, प्रमिला, ए. पी. राकेश, संतोष कुमार सिंह एवं टी. पी. महतो

उद्यान विज्ञान विभाग, पंडित दीन दयाल उपाध्याय उद्यानिकी एवं वाणिकी महाविद्यालय, पिपराकोठी पूर्वी, चम्पारण

पत्राचारकर्ता: sudhir.das@rpcau.ac.in

परिचय

सिंघाड़ा एक पानी फल है, जिसका वानस्पतिक नाम *ट्रापानैटन्स* है। इसकी खेती मुख्यतः गड्ढो, तालाबों एवं चौर क्षेत्रों में होती है जहाँ वर्ष भर पानी संचय होता है। सिंघाड़ा की खेती जुलाई माह से प्रारंभ होकर दिसम्बर के महीने तक होती है। इसकी खेती वैसे मिट्टी में नहीं हो सकती है जिसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अत्यधिक कम है। जलीय फसल सिंघाड़ा की खेती मुख्यतः मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, कर्नाटक एवं उड़ीसा राज्यों में होती है। देश में सिंघाड़ा उत्पादन में मध्य प्रदेश का प्रथम स्थान है। विश्व स्तर पर एशिया के शीत एवं उष्ण प्रदेशों एवं मध्य तथा दक्षिणी-पूर्व यूरोपीय देशों में इसकी व्यावसायिक खेती होती है। सिंघाड़ा के फल के कायिक आकार के आधार पर यह दो प्रकार का होता हैः कांटेदार एवं कांटा रहित। बिहार में कांटेदार तथा लाल रंग का फल देने वाले पौधे की खेती होती है। जबकि दूसरे प्रदेशों में दो रंगो (लाल एवं हरा) के कांटेदार एवं कांटा रहित फल वाले सिंघाड़ा की खेती की जाती है। इसके पौधे का विकास बहते पानी में नहीं होता है। अगर खेतों या तालाबों में पानी की अचानक काफी कमी कुछ दिनों के लिए हो गई तो यह पौधा मर जायेगा। इसके बीज के अच्छे अंकुरण के लिए मिट्टी का पी.एच. मान 7.0 से लेकर 8.3 तक उचित माना गया है क्योंकि, इसका अंकुरण पी.एच. 4.2 से 5.2 के बीच काफी कम हो जाता है।

नर्सरी की तैयारी

पूर्ण परिपक्व सिंघाड़ा फल जो कि पौधों से टूटकर गिर चुका हो उसे दिसम्बर-जनवरी माह में खेतों से एकत्र कर नए नर्सरी बनाने वाले क्षेत्रों में डाल दिया जाता है या सिंघाड़ा खेती वाले कुछ क्षेत्रों को मेड़ बनाकर दिसम्बर-जनवरी वाले सिंघाड़ा फल को उसी खेत में छोड़ देते है एवं पानी की उचित (1 से 2फीट) मात्रा बनाये रखते हैं। जिससे कि पुनः फरवरी-मार्च महीने में अंकुरित होकर नया पौधा तैयार हो सके एक हेक्टेयर सिंघाड़ा खेती के लिये (182वर्ग मीटर) नर्सरी क्षेत्र पर्याप्त होता है।

मुख्य खेत की तैयारी

खेत की 2 से 3 गहरी एवं गीली जुताई के बाद उसमें पाटा देकर खेत को सिंघाड़ा की खेती के लिए तैयार किया जाता है। सिंघाड़ा की खेती के लिए खेत उपलब्ध होने पर खेत की तैयारी जून के प्रथम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक हर हाल में पूरी कर लेनी चाहिए। बिचड़ा के रोपाई के पूर्व खेतों के चारों तरफ के बाँध को 2 फीट ऊँचा बनाकर लगभग 1.50फीट पानी भर देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

जलीय पौधा होने की वजह से सिघाड़े में ज्यादा पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। सिंघाड़ा की फसल में औसतन (NPK:120:50:60 किग्रा/हे.) यानि 242 किलोग्राम यूरिया, 108 किलोग्राम डीएपी एवं 100 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करना चाहिए।

मुख्य खेतों में रोपाई

सिंघाड़ा की रोपाई जून के अंतिम सप्ताह में की जाती है। किसान भाई नर्सरी से पौधे निकालकर मुख्य खेत या तालाबों में रोपाई करते है। यह रोपाई का कार्य जुलाई के अंतिम सप्ताह तक किया जा सकता है। अतः सिंघाड़े की नर्सरी तैयार करने में कुल दो से तीन माह का समय लग जाता है। खेतों में रोपाई करने के लिए एक तकनीक यह अपनाई जाती है कि एक जगह पर रोपाई करते समय पौधे के तीन से चार बिचड़े को मिट्टी में रोपाई की जाती है। फिर उस स्थान से तीन मीटर की दूरी पर पुनः तीन से चार बिचड़े की रोपाई मिट्टी में की जाती है एवं कतार से कतार की दूरी भी तीन मीटर की रखी जाती है।

सिंचाई

सिंघाड़ा की खेती वैसे तो तालाबों या निचली भूमि वालों क्षेत्रों में की जाती है, जिसमें सिंचाई देने की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन निचली भूमि में भी जहाँ कम पानी रहता है वहाँ किसान 2-3फीट ऊँची मेड़ बनाकर खेती करते हैं। जून महीने के द्वितीय सप्ताह में का मॉनसून आगमन हो जाता है, इसलिए निचली भूमि वाले खेतों में भी वर्षा का पानी भर जाता है। वहाँ पर सिंघाड़ा की रोपाई सफलतापूर्वक की जाती है। कभी-कभी सिंचाई देने की आवश्यकता होती है तो उसमें 2-3 सिंचाई करते हुए पानी के लेवल को 1.5-2.0फीट तक बनाये रखने की कोशिश की जाती है।

खरपतवार नियंत्रण

सिंघाड़ा के विकास की प्रारंभिक अवस्था में अवांछनीय जलीय घासों जैसे सेरेटोफाइलम डेमरसम हाइड्रिला वर्सीटीलाटा, मर्सीलीया या पानी साग (आइपोमिया एक्यूटीका), जलीय मोथा, इत्यादि का प्रकोप बढ़ जाता है। अतः इनकी समाप्ति के लिए पौधों की रोपाई के पहले गीली जुताई के समय 50 किलोग्राम करंज की खली, 41 किलोग्राम अरंडी की खली तथा 30 किलोग्राम चूना प्रति 500वर्ग मीटर के दर से खेतों में डालनी चाहिए। जिसमें देखा गया है कि खरपतवार बहुत ही कम आते है तथा कीट-व्याधि का भी नियंत्रण होता है। यदि फिर भी खरपतवारों का प्रकोप हो तो एक-दो निराई श्रमिक द्वारा करवानी चाहिए। हमेशा खरपतवार मुक्त सिंघाड़ा पौधे का इस्तेमाल करना चाहिए। विशेष परिस्थिति में रासायनिक खरपतवार नाशक जैसे ग्लाइफोसेट का प्रयोग तभी करें जब उपरोक्त बतायें गये तरीकों से तालाबों में घास की समाप्ति न हों।

फसल प्रणाली में सिंघाड़ा की खेती

खेतों में सिघाड़ा की खेती करने से सिघाड़ा के अलावा एक साल में एक ही खेत में दो फसलों को आसानी से लिया जा सकता है। सामान्यतः सिंघाड़ा आधारित लिए जाने वाले फसल प्रणाली हैं- सिंघाड़ा-मखाना, सिंघाड़ा-बरसीम एवं सिंघाड़ा-गेहूँ।

कीट एवं व्याधि प्रबंधन

प्रायः यह देखा गया है कि सिघाड़ा के फसल में कीट एवं व्याधि की समस्या बहुत कम होती है। परन्तु मार्च एवं अप्रैल महीने में नर्सरी में माहु (एफीड) का प्रकोप बहुत बढ़ जाता है। नीम तेल की 3 मिली लीटर मात्रा को 1 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से माहु की समस्या समाप्त हो जाती है। उपले (गाय के गोबर की केक) की राख का छिड़काव करने से भी माहू का प्रकोप समाप्त हो जाता है। सिंघाड़ा के फसल में दूसरी एवं सबसे बड़ी समस्या सिंघाड़ा बीटल की होती है, जिसे नियंत्रित करने के लिए मोनोक्रोटोफास 2-3मिलि./लीटर या इमीडा क्लोरोपीड नामक कीटनाशक का 0.5मिलि./लीटर की दर से घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करनी चाहिए। इसके अलावा सिंघाड़े में कभी-कभी ब्लाइट की समस्या आती है, जिसके नियंत्रण के लिये डाईथेनएम-45 का 2 ग्राम/लीटर का 2-3 छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

सिंघाड़ा फल उत्पादन

पौधे की रोपाई के दो महीने बाद सफेद रंग के फूल आने शुरू होते हैं। 10 दिनों के उपरांत फल बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। छिलके वाले फल की लम्बाई 5 से.मी. से लेकर 7.5 से.मी. तक तथा चौड़ाई 12 से 14.5 से.मी. तक होता है। एक कच्चे फल का वजन औसतन 24 ग्राम होता है तथा छिलके रहित, करनैल का वजन 12-13 ग्राम होता है। सिंघाड़ा नट का घनत्व पानी के घनत्व से 20 प्रतिशत ज्यादा होता है। अतः यह पानी में आसानी से डूब जाता है। इस तरह से यह पौधे से छूटकर मिट्टी की सतह या मिट्टी की सतह से 5 से.मी. अंदर जाकर स्थित हो जाता है। चूंकि यह पौधा अत्यधिक ठंड सहन नहीं कर सकता है, अतः दिसंबर के अंतिम सप्ताह से लेकर जनवरी के दूसरे सप्ताह तक पूर्णतः गलकर समाप्त हो जाता है। परंतु सिंघाड़े के फल की एक विशेषता यह होती है कि यह मिट्टी के गाद में वर्षों तक सक्रिय अवस्था में बना रहता है जिससे कि जब भी पर्याप्त पानी मिलेगा तो यह अंकुरण शुरू कर देगा। सामान्यतः सिंघाड़ा फल की तुड़ाई सितम्बर माह से शुरू होकर दिसम्बर महीने तक की जाती है। इस प्रकार इन दो महीने में कुल 7 से 8 तुड़ाई की जाती है। सिंघाड़ा की कुल उत्पादन क्षमता 16-20 टन प्रति हेक्टेयर है। तालाब विधि से सिंघाड़ा की उन्नत किस्मों की खेती करने पर औसतन 10 से 12 टन/हेक्टेयर बीज का उत्पादन होता है, जो बुआई के लिए प्रयुक्त बीज की आनुवंशिक क्षमता पर निर्भर करता है। जबकि खेत विधि से सिंघाड़ा की खेती करने पर उसी बीज को इस्तेमाल करने पर उसकी उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है जो 16 से 20 टन/हेक्टेयर दर्ज की गई हैं।

सिंघाड़ा का पोषकीय महत्व

सिंघाड़ा का फल कच्चा एवं उबालकर भी खाया जाता है। सूखे सिघाड़े के बीज (छिलका रहित) के आटे का हलवा

बनाकर भी खाया जाता है। यह सूखे फल बादाम, अखरोट एवं काजू की तरह गुणकारी होता है। इसके पोषक महत्व का विवरण सारणी में दिया गया है। सिघाड़े के सूखे फल का आटा भी बनाया जाता है, जो कि धार्मिक अवसरों पर व्रत किये हुए लोग द्वारा खाया जा सकता है। सिंघाड़े के सूखे फल से बने चूर्ण (पाउडर) द्वारा आयुर्वेद में विभिन्न प्रकार की दवाईयां बनाए जाते है जिसका उपयोग पेट, मूत्र, लिवर, किडनी एवं स्पलीन से संबंधित समस्याओं को ठीक करने में किया जाता है। यह डायरिया, डिसेन्टरीएवम आँखों की समस्याओं को भी कम करता है। इसकी विशेष पोषण शक्ति औरतों में गर्भ धारण क्षमता को भी मजबूत करता है क्योंकि यह आयरन कैल्शियम, मैगनेशियम, फॉस्फोरस एवं आयोडिन आदि तत्वों से समृद्ध रहता है।

सारणी 1- सिंघाड़े के सूखे फल में उपस्थित पोषक तत्व प्रति मात्रा

पोषक तत्व	(किलो कैलोरी प्रति 100 ग्राम)
ऊर्जामान	339
विटामिन बी-1 माइक्रोग्राम/ग्राम	37.4
विटामिन बी-2 माइक्रोग्राम/ग्राम	1.4
फास्फोरस	205
पोटेशियम (मि.ग्राम/100 ग्राम)	583
सोडियम (मि.ग्राम/100 ग्राम	44
कैल्शियम (मि.ग्राम/100 ग्राम)	205
मैग्नेशियम (मि.ग्राम/100 ग्राम)	118
आयरन (मि.ग्राम/100 ग्राम)	4.4
मैंगनीज (मि.ग्राम/100 ग्राम)	5.0
ताँबा (मि.ग्राम/100 ग्राम)	1.5
जिंक (मि.ग्राम/100 ग्राम)	20.7
कुल एमाइलोज की मात्रा (प्रतिशत)	16.1

सिंघाड़ा उत्पादन से शुद्ध लाभ

सिंघाड़ा उत्पादन की आर्थिक विश्लेषण के उपरांत पता चलता है कि सिंघाड़ा की खेती करने में प्रति हेक्टेयर कुल खर्च लगभग 1.15 लाख रूपए होता है, जबकि इसके फलों का उत्पादन प्रति हेक्टेयर 15 टन होता है। सिंघाड़ा फल को बाजार में औसतन 20.00 रूपए प्रति किलोग्राम की दर से बेचा जाता है जिससे कुल रकम लगभग 3.0 लाख रूपए प्राप्त होते है।

सिंघाड़ा उत्पादन (प्रति हेक्टेयर) का आर्थिक विश्लेषण

विभिन्न मदों का नाम	प्रति इकाई दर (रूपए में)	कुल खर्च (रूपए)
खेत निर्माण की लागत	3,000	3,000
खाद (कम्पोस्ट-15 टन)	1,000/ टन	15,000
जैविक(खाद-8 क्विंटल)	625/ क्विंटल	5,000
उर्वरक	5,000	5,000
कुल पौधे की लागत (182 m^2 नर्सरी क्षेत्र)	4,000	4,000
रोपनी	4,800	4,800
खरपतवार (03 बार)	4,800प्रतिवार	14,400
कीट और रोग प्रबंधन (02 बार)	1,500	3,000
सिंचाई (6)	1,000	6,000
सिंघाड़ा की तुड़ाई (6 बार) 15 टन	3,000/टन	45,000
परिवहन खर्च (15 टन)	6,000	4,500
अन्य खर्च	5,000	5,000
	कुल खर्च	1,14,700.00

अतः सिंघाड़ा की खेती से शुद्ध लाभ लगभग 1.7 लाख रूपए प्राप्त होता है, जो कि उतने कम समय में किसी नगदी फसल से संभव नहीं है। अतः किसान भाई सिंघाड़े की खेती वैज्ञानिक विधि से करें एवं इस नकदी जलीय फसल से भरपूर लाभ कमाये।

निष्कर्ष

सिंघाड़ा एक अत्यंत उपयोगी जल फसल है, जो तालाबों, झीलों और धीमी गति से बहने वाले जलाशयों में सफलतापूर्वक उगाई जाती है। इसकी वैज्ञानिक खेती से न केवल किसानों की आय में वृद्धि होती है, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था और पोषण सुरक्षा में भी योगदान मिलता है। वैज्ञानिक पद्धति से की गई सिंघाड़े की खेता-जैसे कि उचित जल गहराई (1-1.5 मीटर), रोग एवं कीट प्रबंधन, उन्नत किस्मों का चयन (जैसे 'वाराणसी लोकल', 'सिंघाड़ा ग्रीन'),संतुलित पोषण प्रबंधन, समय पर रोपाई एवं कटाई-से उत्पादन और गुणवत्ता दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। सिंघाड़े के फल में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, कैल्शियम और आयरन की प्रचुरता होती है, जिससे यह एक पोषक और औषधीय मूल्य वाली फसल मानी जाती है। इसके अलावा, जलाशयों का उपयोग करके सिंघाड़े की खेती से अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता नहीं होती, जिससे जल संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

बैंगन फसल के प्रमुख रोगों का देख रख और प्रबंधन

सुखलाल वास्केल, आशीष कुमार त्रिपाठी, डी पी सिंह एवं प्रियंका धुर्वे

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर,
कृषि विज्ञान केंद्र सागर - 2, दमोह एवं कटनी

पत्राचारकर्ता: sukhlalwaskel98@gmail.com

परिचय

बैंगन भारत में 4000 वर्षों से उगाया जा रहा है। बैंगन की खेती देश के लगभग सभी राज्यों में की जाती है। बैगन की उत्पत्ति स्थान भी भारत है,आलू व टमाटर के बाद बैंगन गरीबों की पहुँच तक सदाबहार, सस्ती सब्जी के रूप में पूरे वर्ष उपलब्ध रहता है। विश्व में चीन के बाद भारत में बैंगन की खेती सबसे ज्यादा क्षेत्रफल में (7.23 लाख हेक्टेयर) में की जाती है। जिसकी औसत उत्पादकता वर्तमान में 190 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। जो अन्य देशों की तुलना में काफी कम है। पूरे विश्व में भारत का क्षेत्रफल एवं उत्पादन का हिस्सा क्रमशः 39.3 प्रतिशत एवं 27.6 प्रतिशत है। भारत में क्षेत्रफल की दृष्टि से क्रमशः पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गुजरात, बिहार, महाराष्ट्र, आदि प्रमुख बैंगन उत्पादक राज्य है। मध्य प्रदेश में वर्त्तमान में बैंगन का कुल क्षेत्रफल 42740 हेक्टेयर एवं उत्पादकता 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। जो कि राष्ट्रीय औसत से अधिक है। बैंगन के उत्पादन में रोगो से 20 से 25 प्रतिशत तक की हानि होती हैं। बैंगन के मुख्य रोगो के बारे में इस लेख में विस्तार से जानकारी दी गई है, जिससे होने वाली हानि से बचा जा सकता है।

बैंगन के रोग

1. फोमोप्सिस ओंगमारी तथा फल सड़न

लक्षणः पौधशाला में इस रोग के संक्रमण से पौध पर कमर तोड़ के लक्षण दिखाई देते हैं। खेत में रोपाई के बाद भूमि के संपर्क में आने वाली पत्तियों पर नियमित गोल, भूरे धब्बे बनते हैं, जिनके केन्द्रीय भाग हल्के रंग के होते हैं। पुराने धब्बों पर काले रंग के अनेक फफूंद पिक्निडियम देखे जा सकते हैं। रोगी पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती है। इस रोग के लक्षण तनों पर लम्बे भूरे धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं जो तेज हवा के झोको से टूट कर गिर सकते हैं। फलों पर पनीले धब्बे बनते हैं जो धंसे हुए होते हैं। इन धब्बों पर पिक्निडियम भी बनते हैं तथा फल के अंदर का भाग सड़ जाता है।

रोगजनकः यह रोग फोमोप्सिस वैक्सैन्स नामक फफूंद द्वारा जनित होता है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरणः यह रोग बीज तथा रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों में कवकजाल तथा बीजाणु के रूप में जीवित रहता है। लगभग 26 डीग्री सेल्सियस तापमान तथा आर्द् मौसम इस रोग के लिए उपयुक्त है।

प्रबंधन

- रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- दो वर्षीय फसल चक्र अपनाये।
- स्वस्थ बीज का प्रयोग करें तथा बीज का उपचार कैप्टान 0.3 प्रतिशत से करें।
- पौधे पर कार्येण्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी या 0.1 प्रतिशत या टेब्यूकनेजॉल या प्रॉपिकनजोल 25% EC 1 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव 10-12 दिन के अंतराल पर करें।

2. फाइटोप्थोरा फल सड़न

लक्षणः यह रोग वर्षा ऋतु में आमतौर पर देखने को मिलता है। इस रोग से ग्रस्त फलों का अग्र भाग सड़ने लगता है तथा पूरा फल कवक जाल से ढक जाता है। रोगग्रस्त फल बाद में भूमि पर गिर जाते हैं।

रोगजनकः यह रोग फाइटाप्थोरा पैरासिटिका नामक फफूंद द्वारा होता है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरणः यह फफूंद मिट्टी में एक वर्ष से दूसरे वर्ष तक जीवित रहती है। लगभग 22.5-25 डीग्री सेल्सियस तापमान तथा बारिश वाला मौसम इस रोग के पनपने तथा प्रसार के लिए सहायक है।

प्रबंधन

- फसल चक्र अपनाऐं।

• मानसून की वर्षा के आरम्भ होते ही फसल पर मैटालैक्सिल + मैन्कोजेब 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करें।

सात से दस दिन के अंतराल पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत या बोडौ मिश्रण 4:4:50 का छिड़काव करें

3. जीवाणु उकठा रोग (Bacterial wilt)

रोगजनकः रालस्टोनिया सोलेनेसिएरम

लक्षणः यह रोग मुख्यतया समशीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में जहाँ मौसम गर्म होता है वहाँ अधिक पाया जाता है। यह रोग सामान्यतया सोलेनेसी वर्ग के पौधों में होता है। पौधों की द्वितीयक एवं तृतीयक जड़े सड़ जाती है और केवल मुख्य जड़े ही बचती है। पौधों का अकस्मात् सूखने के समय कभी-कभी पत्तियाँ पीली पड़ने लगती है। प्रभावित पौधों की जड़, तना या क्राउन भाग से अनुप्रस्था काटने पर संवहन बण्डल से हल्के सफेद रंग का अपेक्षाकृत कम पारदर्शी जीवाणु जल स्राव देखा जाता है मृदा में अधिक नमी एवं तापक्रम इस रोग के लिए अनुकूल होता है

प्रबंधन

• खेत को जल जमाव से बचाना चाहिए।

• भूमि में अच्छे जल निकास की व्यवस्था भी इस रोग के नियंत्रण में सहायक होती है।

• मिट्टी में प्रतिकारक जीवाणुओं, नीम की खली एवं कार्बनिक पदार्थों के प्रयोग से भी रोग में कमी के परिणाम प्राप्त होते हैं।

• रोग ग्रस्त क्षेत्रों में कम से कम 3 वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए।

4. राइजोक्टोनिया जड़ - गलन (Rhizoctonia root rot)

रोगजनकः राइजोक्टोनिया सोलेनाई

लक्षणः रोग के लक्षण तने पर मिट्टी के समीप वाले भाग से शुरू होकर जड़ की ओर आगे बढ़ते हैं। शुरू में मिट्टी के समीप तने का छिलका मुलायम और फिर ऊतक गलन शुरू होता है। बाद में पौधा मुरझा जाता है तथा फिर पौधा सूख जाता है। यह रोग पानी लगने वाले खेतों में या उचित जल निकास न होने से ज्यादा लगता है। भारी मिट्टी में भी इस रोग का प्रयोग ज्यादा होता है।

प्रबंधन

• खरपतवार नियंत्रण एवं संक्रमित पौधों को जड़ सहित उखाड़कर जला देना चाहिए।

• रोगाणुओं की संख्या में पर्याप्त कमी करने के लिये गेहूं तथा गन्ना युक्त फसल चक्र अपनाना चाहिए।

• गर्मी की जुताई कर देने पर सक्रिय हुए रोगकारक गर्मी की धूप से मर जाते है।

• गर्मी के बाद जुलाई में हरी खाद को खेत में पलटने के बाद 4-5 किग्रा./हे. ट्राइकोडर्मा विरिडी जैविक फफूँद के प्रयोग से काफी अच्छा परिणाम प्राप्त होता है।

• रोपाई के पूर्व पौधों की जड़ों को ट्राइकोडर्मा चूर्ण के 10 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से घोल में 10 मिनट तक डुबाना चाहिए तथा रोपाई के 10-15 दिन बाद जड़ों के पास इस घोल से भिगोना चाहिए।

• जल निकास का उत्तम प्रबंध होना चाहिए।

• कार्बेन्डाजिम कवकनाशककी 1.0 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर तने एवं जड़ के पास देने से रोग का नियंत्रण हो जाता है।

5. स्केलेरोटिनिया झुलसा (Sclerotinia Blight)

रोगजनकः स्केलेरोटिनिया स्कलेरोसियोरम

लक्षणः इस रोग के संक्रमित भाग में तेजी से गलन शुरू हो जाता है। इस रोग का संक्रमण तना, फल हर जगह हो जाता है। ऊपरी भाग से नीचे की ओर पौधों की टहनियों का सूखना शुरू हो जाता है, संक्रमण बढ़ने की स्थिति में फलों से स्पष्ट जलीय गलन हो जाती है और प्रभावित भागों पर सफेद कवक जाल दिखाई देने लगते है। प्रभावित भागों की गलन के बाद बाहरी कवक जाल पर जलीय बूंदें बन जाती है। जब पौधों की टहनियाँ एवं फल सूखने लगते हैं तो उनके अंदर का कवक कठोर अनियमित आकार के स्केलेरोसिया जैसी संरचनाओं में बदल जाता है।ये दाने बाद में काले एवं कठोर हो जाते है जिन्हें स्कलेरोसियम कहते है। यही स्कलेरोसियम पौधों के अवशेषों के साथ जब मिट्टी में मिल जाते हैं तो अगले साल पुनः रोग उत्पन्न करते है।

प्रबंधन

• गर्मी में ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें।

• खेतों में हरी खाद को पलटने के बाद मिट्टी में ट्राइकोडर्मा पाउडर 4-5 किग्रा/हे. की दर से खेत में मिलायें।

• फसल के अवशेषों को जड़ के पास से काटकर सुबह के समय इकट्ठा कर के जला देना चाहिए।

• मैन्कोजेब कवकनाशी का 2.5 ग्राम/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए

6. कालर रॉट/तलगलन (Collar rot)

रोगजनकःस्कलेरोसियम रोल्फसाई

लक्षण :इसके प्रारम्भिक लक्षण जमीन के पास तने का छिलका गलने लगता है। तने पर सफेद कवक जाल एवं जमीन के ऊपर हल्के भूरे रंग के सरसों के दाने की तरह कवक संरचनांए बन जाती है जिन्हें स्कलेरोसियम कहते है।तने के

आधार के संक्रमित हो जाने की वजह से पूरा पौधा जमीन के पास से गिर जाता है या फिर पीला पड़कर सूख जाता है।

प्रबंधन

♦ खरपतवार नियंत्रण विशेष तौर से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को खेत से पूरी तरह साफ कर देना चाहिए।

♦ गोबर की खाद खेत में मिलाने से पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह पूर्ण रूप से पकी/सड़ी हो।

♦ धान्य फसलों, मक्का, ज्वार, धान, गेहूँ युक्त फसल चक्र अपनाना चाहिए।

♦ खेतों में हरी खाद का प्रयोग करना चाहिए।

♦ पौध लगाने के एक सप्ताह पहले खेत में ट्राइकोडर्मा हारजिएनम / ट्राईकोडर्मा विरिडी जैव फफूँद की 5.0 किग्रा / हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद के साथ मिलाकर भूमि उपचार करें अथवा स्यूडोमोनास फ्लूओरिसेन्स की 5.0 किग्रों/ हेक्टेयर की दर से खेत में मिलाना चाहिये।

♦ रोपाई के पहले पौध को 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम या 5 ग्राम प्रति लीटर ट्राइकोडर्मा हारजिएनम / ट्राईकोडर्मा विरिडी के घोल में 2 मिनट तक उपचारित करना चाहिए।

♦ कार्बेन्डाजिम 0.1 प्रतिशत केघोल से छिड़काव करें एवं 7 दिन बाद कापर आक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत के जलीय घोल से जड़ क्षेत्र में ट्रेंचिंग करना चाहिये।

7. बांझ रोग (Little leaf)

रोगजनकः माइकोप्लाजमा / फाइटोप्लाज्मा

लक्षणः इस रोग का प्रमुख लक्षण पत्तियों का अधिकाधिक छोटा हो जाना, प्रत्येक टहनी पर बहुत सारी छोटी- छोटी पत्तियों का गुच्छा बनना, पौधों का छोटा झाड़ी युक्त हो जाना, गाँठों के बीच का भाग छोटा और पर्णवृत अपेक्षाकृत कम कड़े रह जाते है। इनका रंग हल्का हरा, मुलायम और चिकना हो जाता है। फल यदि बनते हैं तो बहुत छोटे रह जाते है। बैंगन के फूल का रंग बैंगनी न होकर संक्रमण हो जाने पर बाद में पूरा पौधा बांझ हो जाता है। उसमें फल-फूल नहीं लगते हैं यह रोग लीफ हापर कीट द्वारा प्रसारित होता है।

प्रबंधन

♦ रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़कर जला देना या मिट्टी में दबा देना चाहिए।

♦ जिस खेत में बैंगन लगाए हो, उसमें येलोट्रैप या स्टीकीट्रैप का प्रयोग करना चाहिए।

♦ स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट 9 प्रतिशत टेट्रासायिक्लन हाइडोक्लोराइड 1 प्रतिशत) एस. पी. 500 पी.पी.एम. का आवश्यकतानुसार पर्णीय छिड़काव। आवश्यकतानुसार इमिडाक्लोप्रिड 70 प्रतिशतडब्ल्यू. जी. 125 ग्रामए. आई./ हेक्टेयर की दर से अथवा थायामेथाक्साम 25 डब्ल्यू. जी. 200 ग्रामए. आई./ हेक्टेयर की दर से बोने के 25 दिन बाद पत्तियो पर छिड़काव करना चाहिए।

निष्कर्ष

बैगन की बीमारियों के प्रबंधन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना सबसे महत्वपूर्ण है, जिसमें एकीकृत कीटप्रबंधन (आईपीएम) शामिल है।इसका मतलब है कि रासायनिक और जैविक (organic) तरीकों का एक साथ उपयोग करना, जिससे प्रभावी नियंत्रण मिले और फसल की पैदावार बढ़े। इन रणनीतियों में मिट्टी और जल प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण, रासायनिक कीटनाशकों का सीमित उपयोग और लाभकारी कीटों को बढ़ावा देना शामिल है।

❖❖

ABOUT THE SOCIETY

Father of Nation Mahatma Gandhi's concept of rural development meant self-reliance, and least dependence on outsiders. India is an agrarian country and about 65% of our population lives in rural areas. But unfortunately, most of us do not have any idea about the extent of poverty and the real conditions of rural India.

With the purpose of serving the agricultural fraternity and farming community the Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors (SAAHAS) was founded in 2020 (under Society Registration Act, 1860). Among multifarious ways of serving farming community we are involved in training of the farmers by organising technology dissemination programmes in villages, guiding them to adopt good agricultural practices involving planned crop management. It helps in reducing farm base losses and motivating them to become farmer level entrepreneur rather than a simple producer. It involves initiating skill based knowledge to the student of agriculture, horticulture and allied sectors to encourage them to serve the farmers in the best possible ways.

SAAHAS calls us to look into the genuine problems of farmers and address those issues for their betterment in the arena of Agriculture, horticulture and allied sectors. Besides agriculture, horticultural crop production has been given a major focus by Govt. of India in future crop diversification, improving livelihood through doubling farmers' income, economic opportunities through export and job opportunities. While good beginning is made, much is to be achieved in different areas in agro-horticulture sector.

Apart from that, SAAHAS helps developing the culture to involve more number of women in farming, processing of crops and value addition thereof for higher returns in terms of total income. SAAHAS eagerly involves with the farmers and agriculture entrepreneur to motivate them for introducing hi-tech farming, which includes growing of high value horticultural crops in hydroponics, aeroponics, polyhouse, net house and greenhouse. The society has geared up its activities to take up the challenges of biotic and abiotic stresses, emerging needs of quality seeds and planting material and reducing cost of production.

There are several government and non-government organisations intended of farmer's welfare; still there is dire need for more involvement and attachment with the farmers. Our society's noble initiative can ensure diminishing of the persistent gap between agro-technocrats, scientists with the needy farmers. We not only ensure that the farmers choose right variety of right crop, better nutrient management through diagnosis recommended system and pest diagnosis but we also help them to sale their produce at premium rates. There is a major issue of chemical residues in food, soil and ecology which is also a big concern of the century. The Society also aims to motivate the farmers either for minimal use of chemical inputs or total adoption of organic farming. Consultancy, training, awareness programs, national and international seminars and symposia and technical services are the prime activities of the SAAHAS.

Society for advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors publishes peer reviewed scientific journal, 'Journal of Applied Agriculture and Life Sciences (JAALS)', biannually since January 2020 focusing on articles, research papers and short communications of both basic and applied aspect of original research in all branches of Agriculture, horticulture and other allied sciences. To apprise the scientists and all those who are working in the field of Agriculture, horticulture and allied sectors about recent scientific advancement is the aim of the Journal.